विश्ववंदनीय-भगवान

तीर्थंकर वर्द्धमान

आचार्य विरागसागर

महामन्त्र ॐ णमोकार

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं
एसो पंच णमोक्कारो सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढ़मम् हवई मंगलम्।।

वेदों में तीर्थंकर महावीर स्वामी की उपासना

ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्ठतानां चतुर्विंशति तीर्थकराणां।
ऋषभादि वर्द्धमानान्तानां सिद्धानां शरणं प्रपद्ये।।

ऋग्वेद

याति धामामि हविशा याजन्ति ता ते विश्वोवरि भूरस्तु
यज्ञं गयस्कानं प्ररणः सुबीरो बीरहा प्राचार सोमादुयीत।

६-अ.३-१-६-२२-सू-६१ ''ऋग्वेद''

''ॐ पवित्रं नग्नमुपवि (ई) प्रसामहे येषां नग्ना (नग्नेय)
जाति येषां वीरा''

ऋग्वेद

ॐ नग्न सुधीरं दिग्वासमं वृह्मगर्भं सनातनं उपैमि
वींरं पुषरू मर्हंत मादित्य वर्ण तमसः पुरूस्तात स्वाहाः

ऋग्वेद

देव वहि वर्द्धमानं सुविरं स्तोणं सुभर बेधस्याम
धृते नाकं बसवः सीनवेदं विश्वे देवा आदित्याय भियासः

ऋग्वेद मंडल २ अ-१ सू ३

तीर्थंकर वर्द्धमान

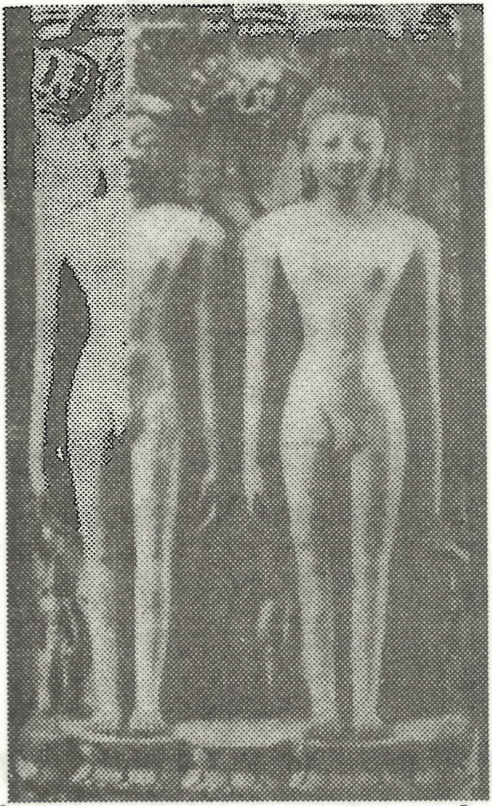

प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव — अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर

(ब्रिटिश म्यूजियम लंदन में स्थित, W.C. 1B-3D.G.)

प्रणाम उपलब्ध हैं जो बताते हैं कि बहुत पहले से ही, प्रथम शताब्दी (ईसा पूर्व) से ही ऐसे लोग थे जो ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर की उपासना करते थे। इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं कि वर्द्धमान अथवा पार्श्वनाथ से पूर्व से ही जैन धर्म प्रचलित था। यजुर्वेद में ऋषभ, अजितनाथ एवं अरिष्टनेमि तीन तीर्थंकरों के नाम उल्लिखित हैं। भगवद् पुराण इस विचार का समर्थन करता है कि ऋषभदेव जैन धर्म के प्रवर्तक थे।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

'इन्डियन फिलोसफी : प्रथम खण्ड पृ. 287'

प्रवचनकार—आचार्य विराग सागर

अवसर

भगवान महावीर स्वामी

की २६०० वी जयंती के अवसर पर प्रकाशित।

कृति :

तीर्थंकर बर्द्धमान-महावीर स्वामी

प्रवचन :

परमपूज्य दिगम्बराचार्य श्री १०८

विराग सागर जी महाराज।

संकलन एवं संपादनः

आर्यिका विभाश्री

प्रकाशकः

श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ,

भिण्ड, मध्य प्रदेश

सौजन्य सेः

हिमान्शु जैन

जी-३६, ग्रेटर कैलाश भाग-२, दिल्ली

संस्करण : १०००० प्रति

चैत्र शुक्ला १३ महावीर जयंती २६००वीं

समर्पण

वर्तमान परिपेक्ष्य में तीव्र आकांक्षाओं एवं भौतिकता की चकाचौंध में मानव का जीवन रूपी रथ भटक गया है। ऐसी विपरीतताओं में यह सर्वविदित है कि जिसके जीवन रथ का साथी जीवंत सत् साहित्य का सृजन सारथी कर रहा हो उसे ही सत्यं शिवं सुंदरं का धाम मिल सकता है।

ऐसे सृजनधर्मी परमश्रद्धेय आचार्य गुरुवर विरागसागर जी महाराज के प्रतिष्ठित व्यक्तित्व से आज कौन परिचित नहीं है? उनका जीवन सहज है, सरल है, लोक प्रतिष्ठ, प्रदर्शन और आडम्बरों से रहित है। यही कारण है कि सादगी व सरलता के सौन्दर्य से शोभायमान उनकी साधना अमिट छाप छोड़ रही है। प्रशस्त अतिशययुक्त वास्तविक स्वाधीन चर्या अनेकों मानव भावनाओं की श्रद्धा भक्ति का केन्द्र बनी हुई है। यदि उनके अन्तर्मन में कुछ जिज्ञासा है तो सिफ इतनी है कि आर्षमार्ग वृद्धिगत रहे। आगम अध्यात्म का मार्ग यथावत् रहे अहर्निश उनकी मनोभावना प्राणीमात्र के कल्याण की रहती है।

सार्वभौमिक चिंतन के इस व्यक्तित्व ने एक ओर जहां साधना के शिखरों को छुआ है वहीं दूसरी ओर आगम और अध्यात्म के महासागर में भी अवगाहन किया है। निशंक, निरीह, निर्भीक, अचल, विमल, गंभीर, निरावलंब तारामण्डल के समान उनका जीवन अनेकानेक पावन गुणों से सुशोभित है। वे समयसार एवं मूलाचार की जीवंत अनुपम कृति हैं। इनकी हित-मितप्रिय वाणी सत्-चित-आनंद की विराट अभिव्यक्ति है। तथा मुक्ति के मार्ग को प्रशस्त करने वाली है।

आचार्य श्री की वाणी में ओज है, माधुर्य है, प्रवाह है, एकात्मता है और चुम्बकीय आकर्षण है उनके स्वाध्याय, कक्षाओं, शंका समाधान तथा प्रवचनों में विशेषता है क्लिष्ट से कलिष्ट विषय का स्पष्टीकरण सरल सहज भाषा में होता है जो मानव के अंतःकरण में असरदार होता है। सत्य है उनके विचार वार्त्तायें

मानव के निराश व उदास जीवन को उत्सव में बदल देते है। यद्यपि दीप स्वपर प्रकाशित होता है लेकिन यदि दीप बहुत दूर रखा हो और रास्ते में अंधकार हो तो उस दीप तक पहुंचने के लिये रास्ते के अंधकार से पार होने के लिये एक दूसरे दीप की आवश्यकता होती है। जिससे दीप के प्रकाश में हम रास्ते को तय करके दूर रखे दीप तक पहुंच सकें। आज गुरु का दीप हमारे पास है, लेकिन देव का दीप बहुत दूर रखा हुआ है। रास्ते में अज्ञान का अधंकार है, गुरु के दीप से हम ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करके देव के दीप तक पहुंचते हैं। यानि के हम भगवान को जानते हैं। तब ही भगवान के प्रति हमारी श्रद्धा, भक्ति, समर्पण की जागृति होती है। महावीर जयंती के पावन पुनीत अवसर पर हम सभी अबोध, अज्ञानी बालकों ने पूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी से भगवान महावीर स्वामी की महिमा को समयसीमा में सुना। सुनकर एहसास हुआ कि "महापुरुष वास्तव में मानव की एक अनुपम कृति है" उस कृति का कृतिकार कोई अन्य नहीं था वे स्वयं ही थे। जब उस अनुपम कृति के कृतिकार वे स्वयं थे तो क्यों न हम सभी अपने जीवन की कृति को उनके जैसी ही अनुपम कृति के रूप में परवर्तित कर लें। यदि पुरुषार्थ करें तो हम भी अपने जीवन की कृति को एक अनुपम कृति का रूप दे सकते हैं।

मानव मात्र तो क्या? प्राणी मात्र अपने जीवन को अनुपम कृति का रूप दे सकें, ऐसी विराट कल्याण की भावना से महावीर जयंती के पुनीत अवसर पर आचार्य श्री का उद्बोधन हुआ। आचार्य श्री के पावन विचार जन-जन तक पहुंचाने के लिये श्रीमान जैन ने इस पुस्तक का प्रकाशन कराके एक पुण्य कार्य किया है। वे साधुवाद के पात्र है। अंत में परम श्रद्धेय, प्रज्ञाश्रमण, अध्यात्ममूर्ति, वात्सल्य सिंधु, तीर्थोद्धारक, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, संत शिरोमणि जैनाचार्य गुरुदेव श्री 108 श्री विराग सागर जी महाराज के परम पुनीत पद पंकज में श्रद्धा, विनय, त्रयभक्ति पूर्वक नमन . . . . . नमन . . . . .

अनंतशः नमन समर्पित है।

आर्यिका विशा श्री

भगवान महावीर स्वामी के पूर्वभव

१. जंम्बूद्वीप/पूर्व विदेह/सीता नदी के उत्तर में/ पुष्कलावती देश/ पुण्डरीकिणी नगरी माधु नामक वन/पुरवा भील राज/कालिका स्त्री/सागर सेन मुनिगुरू।

२. सौधर्म स्वर्ग में देव

३. जम्वूद्वीप/भरत क्षेत्र/ कोसल देश/ विनीता (अयोध्या) नगरी चक्रवर्ती भरत/ अनंतमती देवी मरीचि पुत्र/मुनि/परिव्रजक/भ.ऋषभदेव से।

४. ब्रह्म स्वर्ग।

५. अयोध्या नगरी/कपिल ब्राह्मण/ काली ब्राह्मणी/जटिल पुत्र/परिव्राजक।

६. सौधर्म स्वर्ग।

७. भरत क्षेत्र/स्थूणागार नगर/भारद्वाज ब्राह्मण/पुरूष दत्ता ब्रह्मणी पुष्य मित्र-परिव्राजक।

८. सौधर्म स्वर्ग।

९. भरत क्षेत्र/सूतिका गांव/अग्नि भूति ब्राह्मण/गौतमी ब्राह्मणी। अग्नि सह पुत्र परिब्राजक।

१०. माहेन्द्र देव १६ सागर आयु।

११. भरत क्षेत्र/मंदिर गांव/गौतम ब्राह्मण/कौशिकी ब्राह्मणी/अग्निमित्र-परिव्राजक।

१२. माहेन्द्र स्वर्ग

१३. मंदिर नगर/ शालंकायन ब्राह्मण/मंदिरा ब्राह्मणी/भारद्वाज पुत्र- त्रिदण्डी असंख्यात वर्ष तक त्रस स्थावर- अनेक स्थावर पर्याय

१४. माहेन्द्र स्वर्ग

१५. मगध देश/राजगृह नगर/शाण्डिल्य ब्राह्मण/पराशरी ब्राह्मणी स्थावर पुत्र परिव्राजक

१६. माहेन्द्र स्वर्ग

१७. मगध देश/राजगृह नगर/ पिता विश्वभूतिराजा/ मॉ जैनी स्त्री/ पुत्र विश्वनन्दी/मुनिदीक्षा

१८. महाशुक्र स्वर्ग में देव/आयु १६ सागर

१६. प्रजापति महाराज/पोदनपुरनगर/मृगावतीरानी/त्रिपृष्ठ पुत्र/अर्द्धचक्री

२०. सप्तम नरकपृथ्वी

२१. गंगानदी के समीप सिंह गिरि पर्वत पर सिंह

२२. रत्न प्रभा पृथ्वी (पहले नर्क)/ आयु १ सागर

२३. जम्बूद्वीप में सिन्धुकूट की पूर्व दिशा हिमवन् पर्वत पर सिंह/सम्यक्त्व गृहण-देशसंयम अमितंजय, अमितगुण मुनिसे। निराहारव्रत।

२४. सौधर्म स्वर्ग में सिंहकेतु नामक देव/दोसागर/

२५. कनकप्रभ नगर/राजा कनक पुंख विधाधर/रानी कनकमाला पुत्र कनकोज्जवल/ संयम ग्रहण

२६. सप्तम स्वर्ग में देव! १३ सागर आयु/ समाधिमरण

२७. जम्बूद्वीप/कोसलदेश/साकेतनगरी/राजावज्रसेन/रानी शीलवती हरिषेणपुत्र/ श्रीश्रुतसागर मुनि से दीक्षा।

२८. महाशुक्र स्वर्ग में देव/ १६ सागर आयु।

२६. पुस्कलावती देश/ पुण्डरीकिनी नगरी/ राजा सुमित्र/ रानी मनोरमा प्रियमित्र नामक पुत्र/ चक्रवर्तीपद/ मुनिदीक्षा।

३०. सहस्रारस्वर्ग में देव/ नाम सूर्यप्रभदेव/ आयु १८सागर प्रोष्ठिलगुरू/

३१. छत्रपुर नगर/ नन्दिवर्धनराजा/वीरवती रानी/पुत्र नन्द/ प्रोष्ठलगुरू/ संयम धारण/तीर्थंकरनामकर्म का बन्ध/ ग्यारह अंग का ज्ञाता

३२. अच्युत स्वर्ग/पुष्योत्तर विमान/इन्द्र/ २२ सागर

३३. भरतक्षेत्र/विदेहदेश/ कुण्डपुरनगर/राजा सिद्धार्थ/ रानी प्रियकारिणी/ पुत्र वीर वर्द्धमान

तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर स्वामी

जब जगत में अंधकार का अखंड साम्राज्य छा जाता है तब नेत्रों की शक्ति कुछ कार्य नहीं कर पाती। अंधकार, नेत्र युक्त मानव को भी अंध सदृश बना देता है। इस पौद्गलिक लौकिक अंधकार से गहरा अंधकार मिथ्यात्व के उदय से प्राप्त होता है इसके कारण यह ज्ञानवान जीव अपने स्वरूप को नहीं जान पाता है। मोहनीय कर्म के आदेशानुसार यह निंद्य कार्य करता है। जिस प्रकार सूर्योदय के कारण अंधकार का क्षय होता है, उसी प्रकार तीर्थंकर रूप धर्म सूर्य से धर्म तीर्थ का उदय होते ही जगत में प्रवर्तमान मिथ्यात्व का अंधकार भी अन्तःकरण से दूर होकर जगत के प्राणियों में निजस्वरूप का अववोध कराता है इस स्थिति को आचार्य रविषेण स्वामी ने पद्मपुराण में एक मार्मिक और सुयुक्तिक समर्थित रूप में कहा है कि :-

आचाराणां विघातेन कुदृष्टीनां च संपदा।
धर्मग्लानिंपरिप्राप्तामुच्छ्र्यन्तेजिनोत्तमः।।

जब उत्तम आचार-विचार का विघात होता है, मिथ्यादृष्टियों के लक्ष्मी की वृद्धि होती है और जिन धर्म के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न होने लगता है, तब तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं और फिर वह जिन धर्म का प्रवर्तन करते हैं।

वैदिक धर्म की मान्यता है -

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवतिभारत।
अभ्युथानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

धर्म के प्रति ग्लानि होने पर धर्म की प्रतिष्ठा हेतु परमात्मा मानव आदि पर्यायों को धारण करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि महापुरूषों का अवतरण जगत में धर्म प्रवर्तन हेतु होता है जीवन में अनेक ऐसे दिन आते हैं जो सोने वालों को जगा देते हैं। वे दिन बहुत पावन पवित्र होते हैं।

कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि सोने का वहाना करने वाले को कौन जगा सकता है? ऐसा सोने वाला व्यक्ति जो जागना चाहता है, उसे जगाया जा सकता है। उसे थोड़ा-सा संकेत पर्याप्त है, क्योंकि वह सोते हुए भी जाग्रत होना चाहता था। तीव्र निद्रा वाला व्यक्ति भी थोड़ी देर में जाग जायेगा, लेकिन जो सोने का मात्र बहाना कर रहा है उसे कोई नहीं जगा सकता।

भगवान महावीर ने उन्हें जगाया है जो जागना चाहते हैं। आज पर्व का पावन दिन है। पर्व वे होते हैं जो हमें जगा दें, जो हमें कल्याण की ओर ले जायें, जो हमें पावन, पुनीत, पवित्र बना दें। यह २६००वीं महावीर जयंती पर्व स्मृति परक पर्व है। आज के दिन एक महापुरूष का जन्म हुआ। आज के दिन एक महान् आत्मा को इस धरणी ने धारण किया था। आज के दिन हमारे शास्ता का जन्म हुआ था। अंतिम तीर्थंकर महावीर स्वामी का इस वसुन्धरा पर अवतरण हुआ था।

वैशाली एक समृद्धशाली सुंदर नगरी है, जिसमें चारों ओर धर्म व्याप्त था। वह नगरी कितनी पुण्य सम्पन्न होगी? जहॉ अहर्निश धार्मिक चर्चा थी होती थी, स्थान-स्थान पर मंदिर थे। जगह-जगह पर धर्म स्तोत्र मंगलमय गीत गूँजते थे। ''यदि घर

में एक व्यक्ति धार्मिक है तो सारे घर का वातावरण धर्ममय हो जाता है।'' वह अपनी पुण्य वर्गणायें सारे घर में बिखेर देता है। जहॉ सारा देश ही धार्मिक हो, उस देश की सुख-शांति का क्या कहना? सुख-शान्ति कहीं बाहर से नहीं आती, वह सुख-शान्ति तो आत्मीक धर्म से ही प्राप्त होती है। धर्म की व्याप्ति से ही वैशाली नगरी सुख-शान्ति से व्याप्त थी।

वैशाली नगरी में एक कुण्डग्राम (कुण्डलपुर) है लेकिन आज वह वासुकुंड के नाम से प्रसिद्ध है। वैशाली नगर में दो विभाग थे- क्षत्रिय कुण्ड और ब्राह्मण कुण्ड। जहॉ क्षत्रिय लोग विशेष रूप से निवास करते थे, वह क्षत्रिय कुण्ड था। जहॉ ब्राह्मण लोग विशेष रूप से निवास करते थे वह ब्राह्मण कुण्ड था।

क्षत्रिय कुण्ड के शासक आत्म विद्या में पारंगत रहे, ब्राह्मण कुण्ड के निवासी विद्वान क्रियाकाण्ड आदि में पारंगत रहे। वैदिक एवं उपनिषद् परंपराओं में इस बात का उल्लेख मिलता है कि आत्म विद्या की शिक्षा क्षत्रियों से प्राप्त हुई है। क्षत्रिय पराक्रमी वीर होते है, जिसमें आत्म (धर्म) पराक्रम होता है वे ही मोक्षमार्ग में वीरता आदि गुण अत्यंत आवश्यक है। यही कारण है कि क्षत्रिय लोग आत्मविद्या में पारंगत रहे।

राजा चेटक की चौथी पुत्री त्रिशला का विवाह राजा सिद्धार्थ के साथ हुआ। त्रिशला अत्यन्त वात्सल्यमयी थी एवं सभी को वात्सलय प्रदान करती थी, वह अत्यंत दयालु थी, उसका हृदय किसी भी जीवन के दुःखों को देखकर द्रवित हो जाता था, तथा सभी के दुःखों को दूर करती थी। पशु-पक्षी भी उससे स्नेह रखते

थे। अत्यंत स्नेहमयी होने के कारण उन्हें स्नेहपयस्वनी, ''प्रियकारिणी'' भी कहते थे। वे स्नेहरूपी अमृत में प्रधान थी। माता त्रिशला और राजा सिद्धार्थ का धार्मिक जीवन व्यतीत हो रहा था। राजा सिद्धार्थ उस समय के कुशल शासक एवं कुशल नीतिज्ञ थे।

सूर्य का उदय जब होगा तब होगा लेकिन सूर्योदय के पूर्व ही उसकी किरणों फैलने लगती हैं, तीर्थंकर भगवान की पुण्य प्रकृतियों का उदय उनके आने के पूर्व से ही प्रारम्भ हो जाता है। अभी तीर्थंकर महावीर स्वामी का गर्भ में अवतरण भी नहीं हुआ था कि ६ माह पूर्व से ही इस वसुन्धरा पर भावी तीर्थंकर के मंगलमय आगमन की महत्ता को सूचित करने वाले अनेक कार्य संपन्न होने लगे थे। इन्द्र की आज्ञा के अनुसार स्वर्गपुरी के समान वैशाली की रचना की गयी। उस जिनेन्द्रपुरी की रचना में इन्द्र स्वयं सूत्राधार था, कुवेर देव शिल्पी था। जिसने १२ योजन प्रमाण नगरी की रचना की। भगवान के जन्म के छः माह पूर्व से तथा नौ माह गर्भ तक (६+९) कुल १५ माह तक इन्द्र की आज्ञा से कुबेर के द्वारा जन्म नगरी में प्रतिदिन चार बार साढ़े तीन करोड़ रत्नों की वर्षो होती थी- सुबह, मध्यान्ह, सायंकाल तथा मध्य रात्रि। १४ करोड़ रत्नों की प्रतिदिन वर्षा होती थी, किन्हीं शास्त्रों में यह वर्षा ३ बार अर्थात् प्रतिदिन साढ़े दस करोड़ भी कही गई है। रत्नवृष्टि के विषय में दो प्रकार के उल्लेख आते हैं एक तो राजभवन के प्रांगण में रत्नवृष्टि का, और दूसरा चारों दिशाओं में रत्नवृष्टि का। स्वर्ग से अवतरण के ६ माह के समय में जैसे-जैसे दिन न्यून हो रहे थे वैसे - वैसे जिनेन्द्रपुरीमें श्री वैभव

सुख आदि की वृद्धि हो रही थी। शीघ्र ही वह समय आ गया सोलहवे अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर कि विमान से अपनी आयु पूर्ण कर देवायु समाप्त होकर मनुष्यायु का उदय आ जाने से वह स्वर्ग की विभूति मानव लोक में आ गई माता त्रिशला को १६ स्वप्न द्वारा उक्त बातों की सूचना देने के साथ अपने मंगलमय जीवन की महत्ता को पहले से ही प्रकट कर दिया ।

महारानी त्रिशला नींद में स्वप्न देख रही थी। प्रातः काल का संकेत देने वाली भेरी बजने लगी थी महारानी त्रिशला के नेत्र खुल गये उन्होंने उठकर सर्वप्रथम पंच परमेष्ठी का स्मरण किया। पुनः अपनी क्रियाओं से निर्वृत होकर राज सभा की ओर चलीं। सभी लोग देख रहे थे। वे सोच रहे थे आज क्या बात है? महारानी त्रिशला राजसभा की ओर क्यों जा रही हैं? महारानी त्रिशला ने राजसभा में प्रवेश किया। राजा सिद्धार्थ ने यथायोग्य सम्मान देकर उनको योग्य आसन दिया फिर महारानी से राजसभा में आने का कारण पूछा? महारानी ने रात्रि के अंतिम पहर में देखे हुए सोलह स्वप्नों को बताया और राजा सिद्धार्थ से उनका फल जानने की जिज्ञासा प्रकट की।

महाराज ने उनका फल इस प्रकार बताया :-

१. गर्जना करने वाला सफेद हाथी : देखने का फल यह है कि आपकी कुक्षि से पुण्याधिकारी सर्वश्रेष्ठ तीन लोक का अधिपति तीर्थंकर पुत्र होगा।

२. सफेद बैल : यह बालक धर्मधारी जगत्त पूज्य होगा।

३. सिंह : यह अनंत बल का धारी होगा।

४. लक्ष्मी का कलशाभिषेक : उसका सुमेरू पर्वत पर अभिषेक होगा।

५. फूलों की दो मालायें : धर्म की वृद्धि करेगा।

६. पूर्ण चन्द्रमा : तीन लोक में आनंनदकारी होगा।

७. सरोवर में क्रीडा करते दो मीन : अनेक सुखों का भोक्ता होगा।

८. उदय होता हुआ सूर्य : महाप्रतापी होगा।

९. स्वर्णमय दो पूर्ण कलश : अनेक निधि का स्वामी होगा।

१०. पद्म सरोवर : एक हजार आठ लक्षणों का धारी होगा।

११. उन्नत सरोवर : एक हजार आठ लक्षणों का धारी होगा।

१२. रत्न जड़ित सिंहासन : बड़े राज्य का भोक्ता होगा।

१३. स्वर्ग का देव विमान : जन्म से अवधि ज्ञानी होगा।

१४. धरणेन्द्र भवन : स्वर्ग से अवतरित होगा।

१५. प्रकाशमयी रत्न राशि : गुणों का स्वामी होगा।

१६. धूम रहित अग्नि ज्वाला : अष्ट कर्म का नाश करेगा।

उपर्युक्त स्वप्न के साथ तीर्थंकर होने वाली आत्मा आषाढ़ शुक्ला षष्ठी के दिन माता के गर्भ में आ गई। उस समय समस्त सुरेन्द्रादि गर्भावतरण की बात विविध निमित्तों से जानकर

कुण्डग्राम में आयें। सभी देवेन्द्र और देवों ने नगर की प्रदक्षिणा दी तथा भगवान के माता-पिता को प्रणाम किया। बड़े हर्ष से गर्भ कल्याणक महोत्सव मनाया गया। इन्द्र की आज्ञा से अष्ट्दिक-कन्यायें एवं ५६ कुमारियां जिन माता की सेवा के लिए आई। कीर्तिदेवी आदि ६ देवियॉ माता का गर्भशोधन का कार्य करती थीं। शेष देवियॉ माता की सेवा प्रकट रूप से तथा कुछ प्रच्छन्न (गुप्त) रूप से करती थी। धर्म शर्माभ्युदय ग्रन्थ में कहा है कि तीर्थंकर आत्मा गर्भ में निवास करते हुए भी मल से अकलंक अंग युक्त थी अर्थात् माता के गर्भ में रहकर भी वह गर्भ से निर्लिप्त रही।

उन्नत उदयाचल के गहन में छिपा हुआ तिग्मराशि क्या कभी अपने तेज को छोड़ता है? अर्थात् कभी नहीं। प्राची दिशा के गर्भ में सूर्य सदृश जिन जननी के गर्भ में छिपे हुए वे धर्म सूर्य जिनेन्द्र भव्यों को अधिक हर्ष प्रदान कर रहे थे। जिस समय प्रभु का जन्म हुआ उस समय के आनंद विभोर का कौन वर्णन कर सकता है? आज से २६०० वर्ष पूर्व चैत्र शुक्ला त्रयोदशी की अंतिम रात्री में तीर्थंकर महावीर स्वामी का जन्म हुआ। जन्म के समय जननी को कोई कष्ट नहीं हुआ देवियॉ सेवा में तत्पर थीं। आज विज्ञान भी इस बात को स्वीकार करता है कि प्रत्येक मनुष्य के शरीर से बहुत सी प्रभा (आभा Reflex) निकलती है और वह वातावरण में फैल जाती है। यह प्रभा मनुष्य के परिणामों के अनुसार निकलती है। जो व्यक्ति जितना अधिक शक्तिशाली होगा उसकी वर्गणायें उतनी ही अधिक तीव्रता से, उतने ही

अधिक स्थान को प्रभावित करेंगी।

हमें देखना है कि भगवान कितने शक्तिशाली, कितने प्रतापी, कितने वीर होंगे जिनके जन्म ने तीनों लोकों को प्रभावित कर दिया। अन्तःकरण में सभी जीवों ने जिनेन्द्र जन्मजनित आनंद का अनुभव किया। त्रिभुवन के सभी जीवों को यहॉ तक कि नारकी जीवों को भी एक क्षण के लिए शांति का संवेदन हुआ।

महावीर पुराण में कहा है कि प्रभु का जन्म होते ही भवनवासी देवों के यहॉ शंखनाद होने लगा, व्यंतरों के यहॉ भेरी नाद होने लगा, ज्योतिषी देवों के यहां सिंहनाद होने लगा तथा कल्पवासियों के यहॉ स्वयंमेव घण्टा बजने लगे। उस समय सौधर्म इन्द्र का आसन कम्पित हुआ तथा उसका मुकुट झुक गया। सौधर्मेन्द्र चकित हो सोचने लगा कि यह किस निर्भय, शंकारहित, अत्यंत बाल स्वभाव, स्वछन्द भाव वाले तथा शीघ्र कार्य करने वाले व्यक्ति का कार्य है। हरिवंश पुराण मे कहा है कि अपने पराक्रम से शोभायमान में देव दानव समुदाय के किंचित प्रतिकूल होने पर जो उनके दमन करने की सामर्थ्य धारण करता हूॅ ऐसे शक्र, पुरन्दर, इन्द्र नामधारी मेरे अकम्पित सिंहासन को कंपित करते हुए कम्पित कर्ता ने मेरी कुछ गणना नहीं की। फिर सौधर्मेन्द्र के चित्त में एक बात उत्पन्न हुई कि तीनों लोकों में ऐसा प्रभाव तीर्थंकर भगवान के सिवाय अन्य में संभव नहीं है। इसके पश्चात् अवधिज्ञान के द्वारा उसे ज्ञात हो गया कि भरत क्षेत्र में महाराज सिद्धार्थ के यहॉ वर्द्धमान तीर्थंकर का जन्म हुआ है।

तत्काल ही उसने विस्मय भाव से, महान् आनंद रस में परिणत

होकर ''जिनेन्द्र भगवान जयवंत हो'' ऐसा कहकर सात कदम आगे बढ़कर हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर जिनेन्द्र भगवान को परोक्ष रूप से प्रणाम किया।

भगवान का जन्म तो वैशाली के कुण्डग्राम में हुआ था और उनके जन्म की सूचना देने वाली वाद्य ध्वनि स्वर्गलोक में होने लगी थी। जिनागम में जगद्व्यापी एक पुद्गल महास्कंध माना है वह सूक्ष्म है, नेत्रों में अगोचर है। आज के भौतिक शास्त्रियों ने ''ईथर (Ether) नाम का एक तत्व माना है। जिसके माध्यम से हजारों मील का शब्द रेडियों, टी.वी., वायरलेस आदि यंत्र द्वारा सुनाई पड़ता है। तत्त्वार्थ राजवार्तिक में पुद्गल की दो प्रकार की स्थूलता कही है। पुद्गल की अंतिम स्थूलता जगतभर में व्याप्त महास्कंध में है। इस महास्कंध के माध्यम से जिनेन्द्र जन्म की सूचना तत्काल संपूर्ण जगत को अनयास प्राप्त हो जाती है।

प्रभु जन्म के समय का नैसर्गिक वातावरण अत्यंत सुंदर रमणीय हो गया था। नभमंडल अत्यंत स्वच्छ था, मन्द-मन्द सुगन्धित पवन का संचार हो रहा था, आकाश से सुगंधित पुष्पों की वर्षा हो रही थी ऐसा प्रतीत हो रहा था कि समस्त प्राकृतिक मुद्रा को धारण कर रही हो उसका संकेत है कि आत्मा की वैभाविक परिणति को त्याग कर अपनी प्राकृतिक स्थिति को ये जिनेन्द्र भगवान शीघ्र ही प्राप्त करेंगे। इसीलिए सचेतन और अचेतन प्रकृति के मध्य उल्लास और आनंद की रेखा दिखाई पड़ती थी। उस समय नगाड़ों की ध्वनि से पृथ्वी हिलने (कंपित) होने लगी।

इन्द्र अपनी विभूति के साथ भगवान का जन्म कल्याणक मनाने के लिए तैयार हो गये। इन्द्र के साथ हाथी, घोड़ा, रथ, गंधर्व पदाति बैल तथा नृत्य कारिणी रूपधारी सात प्रकार की सेना सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से निकली। देवों का जूलूस कितना मनोहर, कितना विशाल होगा यह आप अपने चिंतन से जान सकते हैं। उन्हें शब्दों से नहीं बताया जा सकता है -

देव देवांगनायें भवनत्रिक के देवताओं का समुदाय महान् पुण्यात्मा सौधर्मेन्द्र के नेतृत्व में आकश मार्ग से श्रेष्ठ वैभव, आनंद, प्रसन्नता तथा हर्षातिरेक से आगे की ओर बढ़ रहा था। उन आते हुए देवों के विमान और वाहनों से व्याप्त हुआ आकाश ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो ६३ पटल वाले स्वर्ग को छोड़कर अन्य स्वर्ग का निर्माण हो गया हो। सौधर्मेन्द्र ने एक लाख योजन के ऐरावत हाथी पर बैठकर अनेक देवों से समलंकृत हो जिनेन्द्रपुरी में प्रस्थान किया। ऐरावत हाथी का वर्णन अद्भुत रस को जागृत करता है। देविक चमत्कार का वह अत्यंत मनोहर रूप था। देवों में विशाल कल्पना शक्ति होती है। तिलोय पण्णत्ति ग्रन्थ में ऐरावत हाथी के विषय में कहा है कि - सौधर्म और ऐशान इन्द्र के (नागदन्त अभियोग्य) वाहन जाति के देव ने विक्रिया से एक लाख योजन प्रमाण से ऐरावत हाथी का शरीर बनाया था। उसके ३२ मुख थे प्रत्येक मुख में ४-४ दांत थे। कुल दांत (32x4)=128 थे। प्रत्येक सरोवर में ६-६ योजन प्रमाण कमल वन थे। एक-एक सरोवर में ३२-३२ महापदम् (कमल) थे। कुल महापदम् (128x32) = 4096 प्रत्येक पदम् पर एक-एक नाट्यशालायें थी

और प्रत्येक नाट्यशालायें में ३२ - ३२ अप्सरायें नृत्य करती थीं। कुल अप्सरायें (4096 x 32) = 131072 थी।

पंचमंगल पाठ में भी यद्यपि ऐरावत हाथी का उपरोक्त वर्णन है किन्तु संख्याओं में अंतर है यथा ऐरावत हाथी के १०० मुख थे प्रत्येक मुख में ८-८ दांत थे। प्रत्येक दांत के अग्रभाग पर एक-एक सरोवर था, प्रत्येक सरोवर में १२५-१२५ कमलनियॉ थीं तथा प्रत्येक कमलनियों पर २५-२५ कमल थे। और प्रत्येक कमल के १०८-१०८ पत्ते थे। तथा प्रत्येक पत्ते पर एक-एक अप्सरा भक्तिपूर्वक नृत्य करती थीं। इस प्रकार ऐरावत हाथी पर कुल २७ करोड़ अप्सरायें नृत्य करती थी। इस प्रकार यहा पर कुल १०० मुख, ८०० दांत और सरोवर १००००० कमलनियां, २५००००० कमल और २७०००००००० अप्सरायें नृत्य करती थीं।

अब प्रश्न होता है क्या ये सब सत्य है या भक्ति की भाषा है? मैं कहूंगा कि यह सब पूर्ण सत्य है। फिर प्रश्न उठता है कि यह सब पूर्णता सत्य कैसे हो सकता है? क्यों कि जम्बूद्वीप का ही माप १ लाख योजन है और उसके बीच सुमेरू पर्वत है। तो एक लाख प्रमाण योजन वाला ऐरावत हाथी आ भी कैसे सकता है? और यदि मान भी लिया जाये कि वह सुमेरू पर्वत पर सटकर खड़ा हो सकता है भले ही उसके शेष अंग लवण समुद्र तक पहुंच जायें पर उसने कुण्डलपुर नगरी की तीन परिक्रमा की यह कैसे सम्भव है? तथा जब वह खड़ा ही जम्बूद्वीप में है तो फिर वह बालक तीर्थंकर कुमार को लेकर सुमेरू पर्वत पर गया और वहॉ उसने सर्वप्रथम पर्वत की तीन परिक्रमा की यह कैसे सम्भव है? इसका भी उत्तर बहुत ही सुगम

व सहज है। यद्यपि इसविषय में प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए थे क्योंकि यह सब तो देवों का काम है, और देवों के पास अनेक ऐसी विद्यायें होती हैं जिनके बल से वे शरीर को एक राई के बराबर कर सकते हैं। और एक विशाल पर्वत बराबर भी बना सकते हैं। मनुष्य जब देवों की कल्पना अपनी बुद्धि से करता है उन्हें अपने आप से मापने लगता है पर यह कूप मण्डूक बुद्धि की तरह गलत है। जैसे कि कुयें में रहने वाले एक मेंढ़क ने कुयें के ऊपर एक हंस को देखा और प्रसन्न हो उससे पूछा- ''आप कहां से आये हो'' और कहॉ जा रहे हो तो हंस ने कहा - ''मै समुद्र से आ रहा हूॅ और मान सरोवर जा रहा हूॅ'' इतना सुनते ही मेंढ़क ने बड़े विस्मय से पूछा समुद्र ! समुद्र कितना विशाल होता है? उसने हाथ फैलाकर कहा, इतना?

हंस : इससे भी बड़ा

मेंढ़क : उसने दोनों हाथ फैलाते हुए कहा, इतना।

हंस : इससे भी बड़ा।

मेंढ़क : उसने हाथ और पैर दोनों फैलाकर कहा इतना।

हंस : इससे भी बड़ा।

मेंढ़क : शक्ति भर छलांग लगा कर कहा, इतना।

हंस : इससे भी बड़ा।

मेंढ़क : हाथ पसारे पावं पसारे, और पसारो गात।
या से बड़ा समुद्र है, कहन सुनन की बात।।

अर्थात् मेंढ़क को हंस की बातों पर विश्वास नहीं हुआ। उसने कहा समुद्र की बातें मात्र कहने सुनने की हैं वास्तविक नहीं।

हंस - अच्छा तुम मेरी पीठ पर बैठ जाओं फिर मैं समुद्र दिखाता हूँ। मेंढ़क ने ऐसा ही किया वह हंस की पीठ पर बैठ गया और हंस उड़कर आकाश की ऊंचाइयों को पार करता हुआ समुद्र पर जा पहुंचा।

हंस-देखो ! यह है समुद्र देखा यह मात्र कहने सुनने की बात नहीं है।

भव्य बंधुओं, ऐरावत हाथी बनाने वाले की भक्ति-सीमा को बतलाने के लिये ही ऐसा कहा गया है कि वह इतना विशालकाय था उसके विषय में प्रश्न के लिये स्थान नहीं है निश्चित ही वह पर्वत की परिक्रमा तथा नगर की परिक्रमा देते हुये अथवा रास्ते में चलते हुये लघुकाय हो गया होगा क्यों कि वह हाथी भी देव था। (अथवा उसमें इतना विशालकाय होने की शक्ति थी।)

दूसरी बात यह है कि जब किसी बड़ी वस्तु की फोटो निकालते हैं तो उस फोटो में वह वस्तु छोटी होती है लेकिन वस्तु के कथन के समय हम वस्तु की लम्बाई चौड़ाई का वास्तविक वर्णन करते हैं न कि फोटो के अनुरूप। एक छोटे से लेंस में बड़ी-बड़ी वस्तुयें भी दिख जाती हैं। वस्तु लेंस में छोटी दिख रही है इसका तात्पर्य यह नहीं कि वस्तु उतनी ही छोटी है। वस्तु तो जितनी है उतनी ही रहेगी वह लेंस के अनुरूप छोटी नहीं होगी। प्यारे बंधुओं जब लौकिकता में यह सब दृष्टिगोचर होता है तब विक्रियायुक्त देवों तथा जिनेन्द्र के विषय में शंका करना सही बात नहीं है।

कुण्डलपुर नगरी को चारों ओर से देवी देवाताओं ने घेर लिया।

सौधर्म इन्द्र ने शचि इन्द्राणी को प्रसूति गृह से बालक को लाने की आज्ञा दी। इन्द्राणी बालक को प्रसूति गृह में लेने जाती है और वह माता त्रिलाशा के आंचल में बैठे हुये बाल स्वरूप जिनेन्द्र का दर्शन करती है। उस समय इन्द्राणी के हृदय में ऐसा आनंद आया कि उसका वर्णन साक्षात् सरस्वती के द्वारा भी शायद ही सम्भव है। त्रिलोकीनाथ की मुख चंद्रिका के दर्शन से शची के नयन चकोर पुलकित हो रहे थे। हृदय कल्पनातीत आनंद सिंधु में निमग्न हो रहा था। शची ने बाल जिनेन्द्र सहित माता को बड़े प्रेम, ममता, श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक देखा। माता और भगवान् की अनेक बार प्रदक्षिणा करके माता की स्तुति विविध रूपों में करते हुये कहा-हे माता तुम तो तीनों लोकों का कल्याण करने वाली विश्व जननी हो, कल्याणकारिणी हो, सुमंगला हो, महादेवी हो, यशस्वनी और पुण्यवती हो।

इन्द्राणी बालक को प्रसूति गृह से ले जाने से पहले सोचती है कि त्रिशला एक बालक की माता हैं, मां का हृदय अत्यंत कोमल होता है, मां का पुत्र से अत्यंत स्नेह होता है वह अपने पुत्र के लिये अपना सब कुछ अर्पण कर देती है।

जब हिरणी के सामने शेर आता है तब यद्यपि वह जानती है कि वह शेर को पराजित नहीं कर सकती तथा उसकी पराजय निश्चित है लेकिन फिर भी वह शेर से लड़ने के लिये तैयार हो जाती है। जब तक उसके तन में प्राण रहते हैं तब तक वह अपने

पुत्र की रक्षा करती है। जब एक पशु को अपने प्राणों से ज्यादा अपने पुत्र से स्नेह होता है तब महारानी को अपने पुत्र से कितना प्रेम होगा। निद्रा भंग होने पर अपने पुत्र को न पाकर अधीर हो जायेगी इसीलिए इन्द्राणी ने माता त्रिशला को मायामयी निद्रा में सुला दिया, फिर इन्द्राणी ने सोचा कि यदि किसी ने पुत्र को न पाकर राजा सिद्धार्थ को सूचना दे दी तो सभी विह्वल हो जायेंगे। अनिष्ट की आशंका न हो अतः इन्द्राणी ने मायामयी पुत्र को बनाकर माता के पास लिटा दिया। शची ने तीर्थंकर पुत्र को अपने हाथ में उठाया और परम आनंद को प्राप्त किया। उस समय अत्यंत दुर्लभ बाल जिनेन्द्र के शरीर को छूकर ऐसा लगा मानो तीन लोक का ऐश्वर्य ही उसने अपने अधीन कर लिया हो। इन्द्राणी ने प्रभु को आदरपूर्वक लेकर इन्द्र को देने के लिए प्रसूतिगृह से बाहर पैर रखे। जिस प्रकार पूर्व दिशा प्रकाशमान मणियों से शोभायमान उदयाचल के शिखर पर बाल सूर्य को विराजमान करती है उसी प्रकार इन्द्राणी ने बाल जिनेन्द्र को इन्द्र के कर कमलों में विराजमन किया।

प्रभु की अनुपम सौन्दर्यपूर्ण मनोज्ञ छवि का दर्शन कर सुरराज ने सहस्र नेत्र बनाकर अपने आश्चर्य चकित अन्तःकरण को तृप्त करने का प्रयास किया। किन्तु फिर भी वह आश्चर्य एवं आनंद के सिंधु में आकण्ठ निमग्न रहें। जिस समय सुरराज ने जिनेन्द्र भगवान को गोद में लिया और इन्द्र ने प्रभु की स्तुति की उस समय जय-जयकार के उच्च स्वर से दसों दिशायें गुंजायमान हो गई थी।

समय जय-जयकार के उच्च स्वर से दसों दिशायें गुंजायमान हो गई थी।

भगवान को लेकर इन्द्र ऐरावत हाथी पर विराजमान हुए। उस परम पावन दृश्य की एक क्षण अपने मन में कल्पना करने से भी हृदय में एक मधुर रस की धारा प्रवाहित हुए बिना न रहेगी। सौधर्म इन्द्र की गोद में त्रिलोकीनाथ हैं, ईशान स्वर्ग का सुरेन्द्र धवल वर्ण का छत्र लगायें हैं। सनतकुमार तथा माहेन्द्र नामक इन्द्र युगल देवाधिदेव के ऊपर चमर ढुरा रहे हैं। उस लोकोत्तर दृश्य में पीयूष धारा प्रवाहित करती है तब उस समय के साक्षात् दर्शन से जीवों की मनः स्थिति क्या होगी?

सुमेरू पर्वत की ओर जाता हुआ इन्द्र का जुलूस ज्योतिष मंडल का उल्लंघन करते हुए पांडुक शिला के समीप ऐसा लगा रहा था कि मानो जिनेन्द्र के समशवरण के समान अब स्वर्ग भी भगवान के साथ बिहार कर रहा हो।

जम्बूद्वीप संबंधी सुमेरू की ईशान दिशा के पांडुक वन में सुवर्ण सदृश पांडुक शिला है। यह शिला १०० योजन लंबी ०४ योजन चौड़ी और ०८ योजन ऊँची अर्थ चन्द्रमा के समान आकार वाली है।

पांडुक शिला में सूर्य के समान उन्नत सिंहासन है। सिंहासन के दोनों पार्श्व में दिव्य रत्नों से रचे गये भद्रासन विद्यमान हैं। बाल जिनेन्द्र को मध्य सिंहासन पर विराजमान किया गया। सौधर्म इन्द्र दक्षिणी पीठ (आसन) तथा ईशान इन्द्र उत्तरी पीठ (आसन) पर व्यवस्थित हुए। सभी देवगण जन्मोत्सव द्वारा जन्म

सफल करने हेतु पांडुक शिला को घेरकर बैठ गये। देवों की सेना आकाश मंडल को व्याप्त कर ठहर गई। देव दुंदुभि बज रही थी, अप्सरायें नृत्य गान में निमग्न थी। अत्यंत प्रशान्त, भव्य तथा प्रमोदपूर्ण वातावरण था। बहुत से देव क्षीर सागर का जल लाने के लिए कमर बॉधकर सुवर्णमय कलशों को लेकर श्रेणीबद्ध होकर खड़े हो गये थे। जो स्वयं निर्मल, पवित्र है और जिसमें दूध सदृश्य स्वच्छ निर्मल भावना है। भगवान का स्पर्श करने के लिए ऐसे क्षीर सागर के सिवाय अन्य जल योग्य नहीं है शायद ! ऐसा विचार कर ही देवों ने क्षीर सागर के जल से पंचम गति को प्राप्त होने वाले जिनेन्द्र का अभिषेक करना निश्चय किया। क्षीर सागर का जल जलचर जीवों से रहित होने के कारण अपनी अलग विशेषता रखता है।

तीर्थंकर भगवान के जन्मोभिषेक के समय इन्द्र तीर्थंकरों की पहचान के लिए दाहिने पैर के अंगूठे में चिन्ह देखता है। तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के दाहिने पैर के अंगूठे में शेर का चिन्ह था। वह भगवान के १००८ शुभ लक्षणों में से एक लक्षण स्पष्ट था। इन्द्र ने तीर्थंकर बालक का वीर और वर्द्धमान ऐसे दो नाम रखे जिसे सुन कर सारा आकाश वर्द्धमान तीर्थंकर की जय-जयकार से गूंज उठा।

त्रिषष्ठि श्लाका का पुरुष नामक ग्रंथ में कहा है कि भगवान महावीर का सुमेरू पर इन्द्रकृत जन्म अभिषेक संपन्न होने का था, उस समय इन्द्र के चित्त में एक शंका उत्पन्न हुई थीं कि भगवान का शरीर छोटा है और ये कलश इतने विशाल है। वह कलश ०८ योजन गहरे, ०४ योजन उदर पर चौड़े तथा ०१ योजन

सुकोमल शरीर को संताप उत्पन्न न करें। भगवान ने अवधिज्ञान से इस बात को समझकर इन्द्र के सन्देह को दूर करने के लिए अपने पैर के अंगूठे के द्वारा उस महान गिरिराज को हिला दिया। आचार्य प्रभाचन्द्र ने वृहत्प्रतिक्रमण की संस्कृत टीका में कहा है कि उससे प्रभावित होकर इन्द्र ने वर्द्धमान तीर्थंकर का नाम 'वीर' रखा था।[१] पद्मपुराण में रविषेणाचार्य ने कहा कि भगवान वर्द्धमान प्रभु ने बिना परिश्रम से पैर के अंगूठे के द्वारा सुमेरू पर्वत को कंपित कर दिया था इसीलिए देवेन्द्र ने उनका नाम महावीर रखा था।[२]

सौधर्म इन्द्र ने अभिषेक के लिए प्रथम कलश उठाया और जय-जयकर शब्द करते हुये प्रभु के मस्तक पर १००८ कलशों की एक साथ जलधारा छोड़ी उस समय करोड़ों देवों ने भी जय-जयकार शब्दों के द्वारा आकाश गुंजायमान किया। मंगल गीत एवं देवांगनाओं के हर्ष वर्द्धक भक्ति नृत्य के साथ साढ़े बारह करोड़ वाद्य (वाजे) देवताओं के द्वारा बजाये गये। भगवान का रक्त धवल वर्ण था, क्षीर सागर का जल भी उसी वर्ण का था। अतएव उस जल द्वारा जिनेन्द्र देव का अभिषेक बड़ा सुंदर प्रतीत होता था। विशाल कलशों से गिरी हुई जलधारा से बाल जिनेन्द्र को रंच मात्र भी बाधा नहीं हुई थी। यह देखकर अनेक देवगण विस्मय में निमग्न हो गये। वर्द्धमान चरित्र में कहा है कि जिस समय इन्द्र ने बाल जिनेन्द्र का अभिषेक किया उस समय नासिका

---

१. लेमे नाम महावीर इति नाकालयाधियात्

२. पादांगुष्ठेनं यो मेरू मनायासेना कंपयत्।
१२-७६। पद्मपुराण प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृष्ठ ६६।

में जल के प्रवेश होने से बाल जिनेन्द्र को छींक आ गई इससे सुमेरू पर्वत कंपित हो गया और इन्द्र आदि देवगण तृण के समान सहसा गिर पड़े।[1]

यथार्थ में तीन लोक में जिन भगवान की शक्ति के समान दूसरे की शक्ति नहीं है, यह अवस्थायें बाल जिनेन्द्र की बाल अवस्था में भी अपार स्वाभाविक अपरिमित सामर्थ्य को प्रकट करती है।

श्रेष्ठ रीति से त्रिलोक चूड़ामणि जिनेन्द्र के जन्माभिषेक होने के पश्चात् भगवान के सर्वांग को इन्द्राणी ने उज्जवल वस्त्र से पोंछा, इसके बाद उसने भक्तिपूर्वक सुगंधित द्रव्यों से उनका लेपन किया, यद्यपि वे प्रभु तीनों जगत के तिलक थे फिर भी भक्ति वश उन्होंने उनके मस्तक पर तिलक लगाया। जगत के चूड़ामणि भगवान के मस्तक में चूड़ामणि भगवान के मस्तक में चूड़ामणि रत्न बांधा गया।

यद्यपि भगवान के नेत्र स्वभाव से ही काले थे फिर भी व्यवहार के लिए इन्द्राणी ने उनके नेत्रों में अंजन लगाया तथा इन्द्राणी ने भगवान को असाधारण दिव्य आभूषण तथा वस्त्रों से सुसज्जित किया। इस प्रकार असाधारण रत्नमयी दिव्य मंडनों (गहनों) की कांति एवं स्वाभाविक गुणों से प्रदीप्त प्रभु अत्यंत शोभायमान हो रहे थे। इन्द्र ने भगवान के गुणों की अनेक रूपों में स्तुति की -

हे देव बिना स्नान के ही आपका शरीर स्वच्छ तथा सर्वांग सुंदर

---

१. वर्द्धमान चरित्र, १७-६२

हे देव बिना स्नान के ही आपका शरीर स्वच्छ तथा सर्वांग सुंदर है। परन्तु मैंने अपने पापों की शांति के लिए, आज भक्तिपूर्वक अभिषेक (स्नान) किया है।

आप तीनों जगत के आभूषण हैं, पर मैंने अपने सुखों की प्राप्ति के लिए आपको आभूषणों से अलंकृत किया है।

हे धर्मतीर्थ प्रवर्तक! आपकी स्तुति करने से मेरा जीवन सफल हो गया है। आपकी देह सेवा से हमारा शरीर भी सफल हुआ है, आपके दर्शन से मेरे नेत्र सफल हो गये हैं, आपकी भक्ति ही मुझे भव सागर से पार ले जाने में समर्थ है।

अनंत भवों के उपार्जित कर्मों का नाश करने की सामर्थ्य आपकी भक्ति में ही है।

इसके पश्चात् वैभव सहित वे देव-देवेन्द्र ऐरावत हाथी पर प्रभु को विराजमान कर जिनेन्द्रपुरी आये। इन्द्र ने सिद्धार्थ के महाप्रासाद में प्रवेश कर श्रीगृह के ऑगन में भगवान को सिंहासन पर विराजमान किया तथा तांडव नृत्य किया। महाराजा सिद्धार्थ और प्रियदर्शनी भगवान को प्रेम से विस्तृत नेत्रमुग्ध हो तथा रोमाँचयुक्त होकर देखने लगे। इस समय जनक-जननी को प्रभु का दर्शन कर जो सुख प्राप्त हुआ वह कौन कह सकता है?

अपने अंग से उत्पन्न पुत्र को देखकर सिद्धार्थ ने नेत्र बंद कर लिये। शायद आप लोग सोच रहे होंगे कि सौधर्म इन्द्र १००० नेत्र बना कर प्रभु को देखकर अतृप्त रहे परन्तु भगवान के पिता ने इस औदारिक चर्म चक्षुओं को बंद क्या कर लिया।

इस विषय में कहा है कि सिद्धार्थ ने बाल जिनेन्द्र दर्शन से उत्पन्न आनंद को अपने हृदय में भर लिया था तथा नेत्र रूपी कपाटों को बंदकर लिया था कि वह आनंद उनके नेत्रों से बाहर न निकल जाये।

तीर्थंकर जन्म से ही माता का दूध नहीं पीते है अतः इन्द्र ने उनके दाहिने हाथ के अंतरण में अमृत न्यास किया तथा समस्त वस्त्र आभूषण एवं भोजन आदि देविक व्यवस्था की, दीक्षा के पूर्व तक उत्तम सारी व्यवस्था स्वर्ग से आगत सामग्री द्वारा ही देवतागण करते है बालक महावीर स्वामी के शरीर के निम्नांकित दस अतिशय स्वभावतः ये है -

१. निस्वेदता - (पसीनें से रहित होना)

२. निर्मल शरीर (सुकुमारता)

३. श्वेत रक्त (दूध के समान स्वेद खून)

४. वज्र वृषभ नाराच संहनन (व्रजमयी शरीर)

५. अनुपम रूप (सुन्दर रूप)

६. सुगंधित शरीर (९०० व्यंजन १०८ सामुद्रिक लक्षण)

७. उत्तम लक्षण (१००८ शुभ लक्षण)

८. अनंतवल (अनंत शक्ति)

९. समचतुरस्र संस्थान (शरीर के प्रत्येक अवयवों का यथा स्थान प्रमाणानुसार होना।

१०. हित मित प्रिय वचन।

तीर्थंकर वर्द्धमान जन्म से ही मतिश्रुत और अवधि ज्ञान के धारी थे।

बालक भगवान को पिता के कर कमलों में सौंपने के पश्चात् सुरराज इन्द्र भगवान की चर्या हेतु योग्य अवस्था, योग्य रूप तथा योग्य वेष धारण करने वाले देवकुमारों को निश्चित कर शेष देवों के साथ स्वर्ग चला गया।

एक बार भगवान महावीर स्वामी जन्म के कुछ समयबाद पालने में लेटे हुए थे। वहाँ दो चारण ऋद्धि धारी मुनिराज संजयंत एवं वैजयंत बिहार करते हुए आकाश मार्ग से निकलें। उन मुनिराज के मन में सन्देह था। तत्व विषयक कोई प्रश्न था अकस्मात श्री वर्द्धमान स्वामी का दर्शन होते देखते ही वे निः सन्देह हो गये।तब उन्होंने बड़ी भक्ति भाव से वर्द्धमान स्वामी को 'सन्मति' नाम देकर वहाँ से प्रस्थान किया।

देविक परीक्षा में उत्तीर्ण महावीर पुराण में कहा है कि एक दिन इन्द्र की सभा में भगवान के विषय में चर्चा हो रही थी। इन्द्रकह रहे थे कि देखो वीर जिनेश्वर तो कुमारावस्था में ही धीर-वीरों में अग्रणी, अतुल पराक्रमी, दिव्य रूपधारी और अनेक गुण को धारण किये सांसारिक क्षेत्र में क्रीडा करते हुए कितने मनोज्ञ प्रतीत होते हैं। कौतुकवश संगम नामक देव भगवान की परीक्षा लेने के लिए स्वर्ग से उस वन में पहुँच गया। जहाँ प्रभु अन्य साथियों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। उस देव ने प्रभु को डराने के उद्देश्य से काले सर्फ का विकराल रूप धारण कर लिया

और वृक्ष से लिपट गया। उस सर्प के भय से अन्यान्य साथी वृक्ष से कूँदकर घबराये हुये दूर भाग गये। परन्तु वर्द्धमान स्वामी जरा भी भयभीत नहीं हुए उस विकराल सर्प के ऊपर आरूढ़ होकर क्रीडा करने लगे मानो वे माता की गोद में क्रीडा करते हों। कुमार का धैर्य देखकर सर्परूपी देव बड़ा आश्चर्य चकित हुआ। वह प्रकट होकर प्रभु की स्तुति करने लगा। तदन्तर वह देव भगवान का महावीर नाम सार्थ करता हुआ अपने स्थान को चला गया।

स्वयंभू :

राजकुमार वर्द्धमान शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की तरह शनैःशनैः वृद्धि को प्राप्त हो रहे थे। उनके साथ महारजा सिद्धार्थ माता त्रिशला तथा कुण्डग्रामवासियों का भी भौतिक वा आध्यात्मिक विकास दिन दूना बढ़ता जा रहा था। इन्हीं सब वृद्धियों में वर्द्धमान का नाम सार्थक हो रहा था।

बालक वर्द्धमान में सहज ही अनेक विद्या-कौशल एवं कला चातुर्यता थी जिसके समक्ष बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वान भी अपना सिर टेक देते थे, तो फिर भला कौन उनका गुरू हो सकता है? अर्थात् कोई नहीं। उनका कोई गुरू नहीं था वे गुरूओं के भी कुलगुरू व स्वयंभू थे।

बाल ब्रह्मचारी

जब राजकुमार वर्द्धमान का यौवन काल आया तब उनके समक्ष शादी का प्रस्ताव रखा गया, किन्तु उन्होंने "कीचड़ में पैर

देकर निकालने की तरह उसे उचित नहीं समझा और शादी करने से साफ इन्कार कर दिया वे बाल ब्रह्मचारी तीर्थंकर हुए तथा राजपाठ से अलिप्त रहकर अपने समय को कर्तव्य परायणता के साथ प्रजावत्सलता में व्यतीत करने लगे।

पद्मपुराण, हरिवंश पुराण और तिलोयपण्णत्ति नाम के दिगम्बरीय ग्रंथ बताते हैं कि 24 तीर्थंकरो में से श्री वासुपूज्य, मल्लिनाथ, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और महावीर पांच बालयति हुए है जिन्होंने 'कुमार' अवस्था में संसार त्याग दिया था। श्वेताम्वरीय ग्रंथ भी अपने पउम चरिउ तथा आवश्यक निर्युक्ति नामक ग्रन्थों में इसी बात को स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि महावीर ने 'कुमार' अवस्था में संसार त्याग दिया था। अब केवल यह देखना है कि 'कुमार' शब्द का अर्थ क्या है ? 'कुमार' का अर्थ है कुंवारा यानि अविवाहित यही बतलाया यदि बाल्यावस्था होता तो उसी ग्रंन्थ की गाथा 226 में 'पठमबस' अर्थात पहली यानि कुमार अवस्था में वीरस्वामी के दीक्षालेने का कथन न आता। इससे और भी स्पष्ट हो गया कि पहली बार गाथा 221 और 222 में 'क्फमार' शब्द का अर्थ अविवाहित अर्थात व्रह्मचारी ही है, जैसा कि स्वयं श्वेताम्बरीय मुनि श्री कल्याण विजय भी स्वीकार करते है कि भगवान महावीर के अविवाहित होने की दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यता विल्कुल निराधार नहीं है ?

श्वेताम्बरीय प्रसिद्ध मुनि श्री चौथमल जी महाराज ने अपने 'भगवान' महावीर का आदर्श जीवन के पृ. 561 जो भगवान् महावीर की जन्म कुण्डली दी है। उसी के आधार पर श्री ऐल.ए. फल्टेज साहब ने ज्योतिष की दृष्टि से भी यही सिद्ध किया कि भगवान महावीर का विवाह नहीं हुआ बल्कि वे ब्रह्मचारी थे।

जब दिगम्बर सम्प्रदाय दूसरे अनेक तीर्थंकरों का विवाह होना स्वीकार करता है यदि वर्द्धमान कुमार का भी विवाह होता तो कोई कारण न था कि श्री जिनसेनाचार्य ने जहां हरिवंश पुराण में महावीर के विवाह की जो योजना का उल्लेख किया है वे यशोदा से उनके विवाह होने का कथन न करते। वास्तव में भगवान् महावीर का विवाह नहीं हुआ वे बालब्रह्मचारी थे निष्पक्ष विद्वानों ने भी उन्हें अखण्ड ब्रह्मचारी बताया है।

'स्वयं श्वेताम्बरीय प्राचीन ग्रंथों 'कल्पसूत्र' और 'आचारांगसूत्र' में भगवान महावीर के विवाह का उल्लेख नहीं है। श्वेताम्बरीय आवश्यक निर्युक्ति में स्पष्ट लिखा है कि भगवान् महावीर स्त्री–पाणिग्रहण और राज्याभिषेक से रहित कुमारावस्था में ही दीक्षित हुए थे। (नएइत्थिआभिसेआ कुमारविवांसमि पलइया) अतएव वल्लभीनगर में जिस समय श्वे० आगम–ग्रंथ देवर्द्धिगणि क्षमा श्रमण द्वारा संशोधित और संस्कारित किये गये थे उस समय प्राचीन आचार्यों की नामावली चूर्णि और

टीकाओं में विवाह की बात बढ़ाई गई सम्भव दिखती है। उस समय गुजरात देश में बौद्धों की संख्या काफी थी। वल्लभी राजाओं का आश्रय पाकर श्वे. जैनाचार्य अपने धर्म का प्रसार कर रहे थे। बौद्धों को अपने धर्म में सुगमता से दीक्षित करने के लिए उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए उन्होंने अपने आगमग्रंथों का संकलन बौद्ध ग्रंथों के आधार से किया प्रतीत होता है। बौद्ध यात्री ह्यू नप्संग ने अपने यात्रा विवरण (पृ. 142) में स्पष्ट लिखा है कि श्वेत पटधारी जैनियों ने बौद्ध ग्रंथों से बहुत सी बातें लेकर अपने शास्त्र रचे हैं। पाश्चात्य विद्वान भी इसी बात को स्वीकार करते हैं कि सम्भवतः श्वेताम्बरों ने श्री महावीर जी का जीवन वृतान्त म0 गौतमबुद्ध के जीवन चरित्र के आधार से लिखाहै। (बुल्हर इण्डियन सेफ्ट ऑफ दी जैन्स पृं.45) 'ललित विस्तार' और 'निदान कथा' नामक बौद्ध ग्रंथों में जैसा चरित्र गौतम बुद्ध का दिया है, उससे श्वेताम्बरों द्वारा वर्णित भ. महावीर के चरित्र में कई बातों में सादृश्य है। कैमरेज हिस्ट्री आफ इंडिया (पृ. 156) इस दशा में दिगम्बर जैनियों की मान्यता समीचीन विदित होती है और यह ठीक है कि महावीर जी बाल ब्रह्मचारी थे।

साभारः भ. महावीर और उनका तत्त्व दर्शन

–कामता प्रसादः भ.महावीर पृ.79–89) पृष्ठ 396

वैराग्य :-

जब आप 29 वर्ष 3 माह 20 दिन के हो गये तब एक दिन आपको जातिस्मरण हो जानेसे आत्म ज्ञान जाग्रत हो उठा वे सोचने लगे :-

यह सब राजसी ऐन्द्रियिक सुख जल के बुजबुले की तरह क्षण भंगुर है, जीवन बिजली की भांति अशास्वत है परिजनों का संग रास्ते में मिले राहगीर की तरह अस्थाई है इन सबके क्षणिक मोह में शाश्वत सिद्धि की साधना को भूल जाना नितांत मूर्खता है मृत्यु सभी को अवश्यंभावी है, उससे कोइ आज तक किसी को नहीं बचा सका, चाहे कोई गरीब हो या अमीर मूर्ख हो या विद्वान सभी को मरना पड़ता है तो क्यों न जीवन के रहते अमरता की साधना कर ली जाये वे विचारने लगे कि संसार में कहीं भी शाश्वत सुख नहीं है जो भी सुख है सुखाभास है यह जीव जिस पर्याय में जाता है उसमें रम जाता है और अपने अंतिम लक्ष्य को भूल जाता है। यह जीव संसार में निरन्तर जन्म मरण करता रहता है जैसे कीट पतंगा भी जनम मरण करते है उन्हीं की भांति यदि हमने भी जन्म मरण में दुर्लभ जीवन व्यतीत कर दिया तो उनमें और हममें क्या अंतर है, नहीं नहीं ! अब मुझे संसार में नहीं भटकना है, अतः मैं अवश्य ही इस संसार परिभ्रमण का अंत करूंगा।

यह जीव अच्छे या बुरे कर्यों को स्वयं करता है तथा उसके फलों को स्वयं अकेला ही भोगता है, स्वयं अकेला

ही संसार में परिभ्रमण करता है कोई किसी के सुख दुःख को बाट नहीं सकता है। मैं एक अखण्ड ज्ञायक स्वरूप हूॅ इसे मैं आज तक भूला रहा हूॅ अब निश्चित ही मैं अपने स्वरूप को प्राप्त करूँगा जो आज अपना है वह कल पाराया हो जाता है जो कभी हमें भी अपना मानता था वह भी समय बदलते छोड़े दते है जिन वस्तुओं को हम अपना मानते है वे सब शरीर तक ही रहती है शरीर आयु अवसान तक रहता है अंत में छूट जाता है, जब शरीर भी अपना नहीं तो फिर अपना कौन हो सकता है पर पदार्थों के ममकार अहंकार में अपने अमूल्य समय को खो देना मूर्खता ही है। अब मैं निश्चित ही पर मैं भ्रमित नही होऊँगा प्रायः यह जीव मिथ्यात्व, अवरति, प्रमाद, कषाय और योगों के कारण अनेक प्रकार के कर्मों का आस्रव करता है और फिर उनका जटिल बंध कर संसार में परिभ्रमण करता है। अब मैं निश्चित ही, गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षा परीषहजय एवं उत्तम चारित्र के द्वारा उक्त आस्रव का संवर करूंगा मनुष्य जीवन का सार बारह प्रकार के सम्यक् तपश्चरण द्वारा पूर्व बद्ध कर्मों की संवर पूर्वक निर्जरा कर मुक्ति को प्राप्त करना है। लोक में परिभ्रमण करते हुए जीव ने कही भी सच्चा सुख प्राप्त नहीं किया सच्चे सुख का मुख्य कारण सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र है यह अत्यंत दुर्लभ है एक मात्र मनुष्य गति में विरले ही पुण्यात्मा इसे प्राप्त कर सकते है। हमे निश्चित ही दुर्लभ बोधि के द्वारा अपने वास्तविक धर्म (स्वरूप) को प्राप्त

करना है, इत्यादि विचार कर ही रहे थे कि उसी समय ब्रह्म स्वर्ग से लौकान्तिक देव आकाश मार्ग से जय-जय की ध्वनि के साथ अवतरित हुए उन्होने राजकुमार वर्द्धमान के वैराग्य की भूरि-भूरि प्रशंसा और स्तुति की तथा दीक्षा जैसे महान कार्य की सराहना करते हुए वे वापिस चले गये। राजकुमार वर्द्धमान ने अपनी मधुर वाणी से सभी को प्रसन्न किया। तथा इन्द्र के द्वारा लाई गई चन्द्रप्रभा नामक पालकी पर आरूढ़ (सवार) हो गये, पालकी को सर्व प्रथम भूमि गोचरी मनुष्यों ने उठाकर आगे कदम चले पश्चात विधाधर एवं देव ने अपना सौभाग्य मानते हुए उसे लेकर आकश मार्ग से चलकर षण्ड नामक वन में ले गये। वहाँ एकान्त शान्त और मनोरम स्थान पर पालकी उतारी प्रभु वर्द्धमान पालकी से उतरे और शालवृक्ष के नीचे शिलापर उत्तराभिमुख हो तेला (तीन उपवास) का नियम लेकर बैठ गये। उन्होंने "नमः सिद्धेभ्यः कह कर समस्त वस्त्राभूषणों का त्याग कर सहजोत्पन्न निर्विकार बालक वत् निर्ग्रन्थ नग्न दिगम्बर मुद्रा को धारण कर पंचमुष्ठि केशलुंच किये। तथा सामायिक चरित्र में संलग्न होते ही उन्हें चौथा मनःपयर्य ज्ञान हो गया। भगवान ने मगसिर कृष्णा दशमी की अपराह्नियक वेला में दीक्षा ली थी सौधर्मेन्द्र ने तीर्थंकर महावीर स वामी का दीक्षा महोत्सव को धूमधाम से तप कल्याणक के रूप में मनाया तथा वे धर्म और धर्म के फलों में हर्षित होने रुप सम्यग्दर्शन के

संवेग भाव को भाते हुए वापिस स्वर्ग चले गये।

महामुनि तीर्थंकर महावीर स्वामी के शरीर की ऊँचाई सात हाथ की थी तथा कांति वाल सूर्य की भांति की तीर्थंकर महावीर स्वामी ने दीक्षा से ही केवल ज्ञान होने पर्यंत तक के लिये मौन व्रत ले लिया था तीसरे दिन उन्होंने आहारार्थ प्रस्थान किया। यद्यपि उन्हें आहार की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि वे अनंत शक्तिशाली थे तथा अत्यंत वैरागी थे फिर भी अन्य हीन शक्ति वाले साधुओं को आहारविधि तथा श्रावकों को दानतीर्थ की मौन शिक्षा देने के लिये आहारार्थ निकले। तथा कूल नगरी के कूल विद्याधर नरेश ने उन्हें नवधा भक्ति से अत्यंत भाव विभोर हो पड़गाहा और विनय के साथ आहार कराकर अपना सौभाग्य माना। तीर्थंकर को प्रथम आहार देने वाला निकट भव्य (तद्भव मोक्ष गामी) होता है। देवों ने हर्षित हो पंचाश्चर्य की वर्षा की अर्थात् धन्य-धन्य अहोदान कहना, पांचरंगों के फूल, रत्न वृष्टि, सुगंधित वायु तथा देव दुंदुभी वे विभिन्न प्रकार के उग्र तपों को करने लगे परीषहों और उपसर्गों को अपनी क्षमता से पराजित कर धर्म की विजय पताका फहराने लगे।

उपसर्ग/विजयी अतिवीर

एक दिन वे उज्जयनी नगरी के अतिमुक्तक नामक श्मशान में प्रतिमायोग से खड़े होकर ध्यान कर रहे थे। कि उसी समय वहाँ महादेव (सात्यकी) नामक एक रूद्र

आया और महावीर प्रभु की कठोर साधना देख परीक्षा लेने हेतु उसने अपनी विद्या के द्वारा अनेक वैताल उपस्थित कर डराने का भर्सक प्रयत्न किया देवांगनाओं के सुंदर रूप बनाकर उन्हें शील से चलायमान करने का प्रयास करने लगा व उनके ऊपर जल धूल अग्नि आदि की घनघोर वर्षा करने लगा किन्तु महावीर प्रभु को किंचित भी नहीं डिगा सका अंत में स्वयं ही पराजित हो वीर प्रभु की 'अतिवीर' (महति) नाम से स्तुतिकर अपने स्थान की ओर चला गया।

दर्शन का चमत्कार

राजा चेटक की पुत्री चंदनवाला को वत्सदेश की कोशाम्बी नगरी के वृषभ दत्त सेठ की पत्नि सुभद्रा ने उसे कैद कर रखा था उसने उसके बाल कटवा दिये थे तथा समस्त आभूषण उतरवा लिये थे वह उसे निरन्तर सांकल से बांधे रखती थी तथा मिट्टि के वर्तन में कांजी से मिला कोदों का भात खाने को दिया करती थी। एक दिन उसी नगरी में महावीर स्वामी आहारार्थ निकले, जिन्हें देखने के लिये चंदनवाला उत्सुक हुई उसी समय महामुनि के दर्शनमात्र से उसके बंधन टूट गये वस्त्र आभूषण सुंदर हो गये मिट्टि का सकोरा स्वर्णमय हो गया कोदों का भात शाली तंदुल हो गया। यह सब देख उसकी श्रद्धा भक्ति और अधिक उमड़ पड़ी अतः उसने उन्हें भक्ति पूर्वक पडगाहा और विनय पूर्वक आहार कराया जिससे वहाँ

पंचाश्चर्य की वर्षा हुई सुभद्रा ने भी चिरकालीन वैर भाव को छोड़ दिया तथा सम्मान पूर्वक उसके भाई बांधवों को सौंप दिया।

महामुनि की समता का इतना प्रभाव पड़ता था कि जन्म जात वैरी नकुल, सर्प, सिंह, हिरण, कुत्ता बिल्ली आदि अपने बैर को छोड़कर मित्र बांधवों की तरह हो जाते थे। गाय और शेरनी एक घाट पर पानी ही नहीं अपितु एक दूसरे के बच्चे अर्थात गाय का बछड़ा शेरनी का तथा शेरनी का बछड़ा गाय का दूध पीने लग जाते थे। यह सब देखकर भी गाय या शेरनी एक दूसरे के बच्चों में भी अपने बच्चे की तरह स्नेह रखती थी।

वे संसार में जो देखते थे उसे सोचते भी थे, वे जिन बातों को एक बार सुनते थे कई बार दोहराते थे। वे एक बात बोलते थे लेकिन जो बोलते थे उस पर अनेक बार विचार करते थे, उनके सोचने-समझने की शक्त्तियॉ निराली थी।

उनके चिंतन की धारायें चल रही थी उन्होनें जनमानस को देखा उन्हें चारों ओर हाहाकार नजर आया। उन्हें सारी दुनिया दुःखी नजर आई, सारा संसार संक्लेशित नजर आया। उन्होंने सबके दुःखों का विश्लेषण किया। वे परीक्षण कर रहे थे कि ऐसा कौन सा दुःख है, जो गरीब से अमीर तक प्रत्येक व्यक्ति में है, जो जन्म से मृत्यु तक प्रत्येक प्राणी के जीवन में है विद्वान से मूर्ख तक प्रत्येक मानस जिससे आक्रांत है, पशु से मनुष्य तक मनुष्य से देव तक और देव से पशु तक प्रत्येक प्राणी के जीवन

में व्याप्त है। जो बालक से वृद्ध तक प्रत्येक प्राणी के लिए है। उनका चिंतन अनवरत् रूप से चल रहा है उनकी खोज निरंतर चल रही थी।

तीर्थंकर होने वाले वर्द्धमान स्वामी की वह धारा अविरल चलती रही वे सोच रहे थे कि सभी के जीवन में एक ही प्रकार का दुःख होना चाहिए, उन दुःखों का हल निकालना चाहते थे, जानते थे यदि अलग-अलग दुःखों की अलग-अलग समाधान खोजेंगे तो दुःख की सीमा समाप्त नहीं होगी और समाधान करते-करते थक जायेंगे, लेकिन दुःखों का अन्त नहीं होगा।

उन्होनें एक ही दुःख सभी प्राणियों मेंपाया एवं अपनी अनवरत् साधना के माध्यम से समस्या के समाधान स्वरूप सुख के स्रोत को प्राप्त कर लिया था, वे उस सुख सागर में निमग्न थे, भगवान ने दुःखों का समाधान मात्र अपने उपदेश में नहीं दिया क्योंकि वे जानते थे कि उपदेश द्वारा सुख का स्रोत नहीं दिया जा सकता क्योंकि *"सुख का स्रोत उच्चारण नहीं आचरण है' शब्दनहीं सत्य है, कथनी नहीं करनी है, अभिव्यक्ति नहीं अनुभूति है, व्याख्या नहीं व्याप्ति है, परिभाषा नहीं प्रयोग है।"* इसीलिए उन्होनें उपदेशों में मात्र सुख के स्रोत को नहीं दिया उन्होंने उसको स्वयं आचरण के द्वारा धारण कर लिया या अपने आप में समाहित कर लिया।

केवल ज्ञान

इस प्रकार विभिन्न स्थानों में विहार एवं विभिन्न तपश्चरण करते हुए महावीर स्वामी के बारह वर्ष पांच माह पंद्रह दिन व्यतीत

हो गये। वे बिहार प्रान्त में जृम्भिक ग्राम के समीपस्थ ऋजुकूला नदी के तट पर स्थित मनोहर नामक वन में आये और वहां साल वृक्ष के नीचे वेला का नियम लेकर शिला पर प्रतिमायोग में विराजमान हो गये तब क्षपक श्रेणी पर आरूढ होकर उन्होंने शुक्ल ध्यान के बल से घातिया कर्मों का क्षयकर केवल ज्ञान को प्राप्त किया। केवल ज्ञान होते ही उनका औदारिक शरीर परमौदारिक शरीर (हड्डी मांस आदि धातुओं से रहित) हो गया तथा वह सामान्य धरातल से ५००० धनुष ऊपर उठ गये थे इंद्रादि ने उनका केवल ज्ञान कल्याणक महोत्सव हर्षोल्लास पूर्वक मनाया।

केवल ज्ञान के १० अतिशय -

१. भगवान को केवल ज्ञान होते ही स्वभावत उनसे चारों ओर सौ योजन तक सुभिक्षता थी।

२. तीर्थंकर वर्द्धमान जब गमन करते थे तो ५००० धनुष ही ऊपर आकाश में गमन करते थे।

३. एक योजन प्रमाण में हिंसा का अभाव था।

४. तीर्थंकर वर्द्धमान ने केवल ज्ञान होने के पश्चात् फिर कभी कवल (ग्रास) आहार नहीं किया अर्थात् वे आहार के लिये निकले ही नहीं थे।

५. केवल ज्ञान होने के पश्चात् तीर्थंकरों पर कभी उपसर्ग नहीं होता है।

६. प्रत्येक कक्षा (सभा) में स्थित दर्शकों को लगता था कि

भगवान महावीर स्वामी का मुख हमारी ओर है।

७. केवल ज्ञान हों जाने के बाद तीर्थंकरों की छाया नहीं पड़ती है।

८. उनकी आंखों के पलकों में निमेष (झपकना) नहीं था।

९. सम्पूर्ण विद्याओं के वे स्वामी थे। अर्थात ऐसी एक भी विद्या नहीं है जो उनके आधीन न थी।

१०. नख और रोम जितने थे उतने ही प्रमाण के थे। अर्थात बड़ते नहीं थे।

१४ देवकृत अतिशय :-

१. १८ महाभाषा तथा ७०० क्षुद्र भाषा युक्त अक्षर समूह से रहित निराक्षरी भाषा का होना।

२. संपूर्ण ऋतुओं के फल फूलों की एक साथ उत्पत्ति हो जाना।

३. कंटक और रैती आदि मार्ग में नहीं होना।

४. आपस में वैर भाव नहीं होना अर्थात मैत्री भाव होना।

५. भूमि का दर्पण की तरह स्वच्छ और रत्नमयी होना।

६. मंद-मंद सुगंधित जल की वर्षा होना।

७. मंद सुगंधित वायु चलना

८. पृथ्वी सष्य श्यामला अर्थात खेत फसलों से भरपूर होना।

९. प्रत्येक प्राणियों को नित्य आनंदित होना।

१०. प्रत्येक कूप तालाब आदि जल से पूर्ण हो जाना।

११. आकाश का निर्मल होना अर्थात धुआँ उल्कापातादि से रहित होना।

१२.यक्षेन्द्रों के मस्तक पर धर्म चक्रों का होना।

१३. विहार आदि के समय प्रत्येक कदम पर २२५-२२५ स्वर्ण कमलों की रचना होना।

१४. दिव्य और विविध प्रकार की अष्टमंगल द्रव्य का होना। इत्यादि उनके अनंतो अतिशय थे।

आठप्रातिहार्य -

१. तीर्थंकर महावीर स्वामी को जिस वृक्ष के नीचे केवल ज्ञान हुआ था उसी आकृति का सम्पूर्ण शोक को दूर करनेवाला रत्नमयी दिव्य अशोक वृक्ष था।

२. तीन लोक का आधिपत्य दिखाने वाले सिर के ऊपर तीन छत्र थे।

३. रत्न से रचित स्वर्णमयी सिंहासन था।

४. उनको चौसठ चमर ढोरे जाते थे।

५. देव दुन्दुभि का शब्द होता था।

६. देव कृत पुष्पों की वर्षो होती थी।

७. दर्शको के सात भवों को दिखाने वाला प्रभामंडल था।

८. भगवान के सर्वांग शरीर से दिव्यध्वनि होती थी।

इत्यादि विभूति से युक्त भी तीर्थंकर वर्द्धमान उनसब से अलिप्त और चार अंगुल अधर अर्थात् ऊपर थे।

अनंत चतुष्टय -

अनंतज्ञान (केवल ज्ञान) अनंत दर्शन (केवल दर्शन) अनंत सुख (क्षायिक सम्यक्त्व) अनंत वीर्य (अनंत शक्ति) इस प्रकार भगवान महावीर स्वामी के १० जन्मकृत अतिशय + १० केवल ज्ञानकृत अतिशय + १४ देवकृत अतिशय + ८ प्रातिहार्य + और ४ अनंत चतुष्टय) = ४६ मूलगुणों से सम्पन्न हो गये। वे तेरहवे सयोग केवली गुणस्थान वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, केवली अर्हंत अनंतज्ञ, आप्त, सच्चेदेव, वीतराग, शास्ता, हितोपदेशी निर्ग्रंथ नाथपुत्र, इत्यादि और भी अनेक नामों से वे जाने जाते थे।

वे प्रभु अठारह (१८) दोषों से रहित थे- अठारह दोष

१. क्षुधा (भूख) २ तृषा (प्यास) ३ भय ४ रोष (क्रोध) ५ राग (स्नेह) ६ मोह ७ चिंता ८ जरा (बुढ़ापा) ९ रोग १०. मृत्यु ११ स्वेद (पसीना) १२ खेद (दुःख) १३ मद (अभिमान) १४ रति (प्रेम) १५ विस्मय (आश्चर्य से चकित होना) १६ निद्रा १७ जन्म १८ द्वेष इस प्रकार उक्त दोषों से रहित होने के कारण वीतराग थे।

समवशरण :

केवलज्ञान होते ही सौधर्मेन्द्र की आज्ञा से कुवेर ने अपनी देविक शक्ति से मूहूर्त (४८ मिनिट) प्रमाण काल में एक योजन

(४ कोश) प्रमाण भूमि में समवशरण (धर्मसभा) की अनुपम संरचना की जिसमें दो हजार (२०००) सीढ़ी थी भद्रसाल जैसे अनेक कोट थे, वेदिकाऐं थी, गोपुर थे, मानस्तंभ थे, आठ भूमियाँ थी। १. चैत्य प्रासाद २. खातिका भूमि ३. लताभूमि ४. उपवनभूमि ५. ध्वजभूमि ६. कल्प भूमि ७. भवन भूमि ८. श्री मण्डप भूमि जिसमें बारह (१२) सभाऐ थी। १. मुनि २. कल्पवासी देवियाँ ३. आर्यिकाऐ व श्राविकाऐ ४. ज्योतिषी देवियाँ ५. व्यंतर देवियाँ ६. भवनवासी देवियाँ ७. भवनवासी देव ८. व्यंतर देव ९. ज्योतिषी देव १०. कल्पवासी देव ११. मनुष्य (श्रावक) १२. तिर्यंच। इन सबको बैठने की पृथक्-पृथक् रचनाएँ थी। समवशरण के मध्य में तीन कटनियाँ थी अंतिम कटनी पर रत्न जड़ित स्वर्णमयी सिंहासन था उस पर कमल था उससे भी चार अंगुल ऊपर तीर्थंकर महावीर स्वामी बैटे थे।

सम्पूर्ण रचना होने के बाद सभासदों की अत्यन्त जिज्ञासा होने पर भी तीर्थंकर महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि नहीं खिरी तीर्थंकर वर्द्धमान का आकाश विहार होता रहा जब वे राजगृह के विपुलाचल पर्वत पर पहुंचे तो वहॉ भी कुवेर ने उक्त समवशरण की रचना की। राजगृह नरेश श्रेणिक भी अपने परिजनों के साथ भगवान के दर्शनार्थ गये और भगवान महावीर स्वामी के अत्यंत श्रद्धा भक्ति से दर्शन कर अत्यंत हर्षित थे। वे भी प्रमुख श्रोता के रूप में मनुष्यों के कोठे में बैठ गये। लेकिन

गुरुपूर्णिमा :

केवलज्ञान होने के ६५ दिन व्यतीत हो जानें पर भी भगवान

की दिव्यध्वनि नहीं खिरी नवलशाहकृत महावीर चरित में उल्लेख है कि तीन पहर तक भगवान की दिव्यध्वनि नहीं खिरने से सभी चिंतित थे। तब इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से जान लिया कि अभी समवशरण में इतना कोई बुद्धि सम्पन्न नहीं है जो तीर्थंकर की वाणी उपदेश को समझ सके योग्य पात्र के अभाव में जब एक सामान्य व्यक्ति भी उपदेश नहीं देता है तब तीर्थंकर प्रभु का उपदेश कैसे हो सकता है? उसे समझने की पात्रता गोतम गोत्रीय इन्द्रभूति ब्राह्मण में हैं पर उसे ज्ञानका अत्यन्त अभिमान है वह यहाॅं कैसे आ सकता है इन्द्र ने इन्द्रभूति को लाने का एक उपाय खोज लिया सौधर्मेन्द्र ने अपनी विद्यावल से किसी वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाकर लाठी टेकता हुआ इन्द्रभूति के समक्ष उपस्थित हुआ और वहाँ जाकर उसने इन्द्रभूति से कहा कि हे विद्वतवर इन्द्रभूति ! मैं आपके पास बड़ी जिज्ञासा लेकर आया हूं मुझे विश्वास है आप जरुर उसे पूर्ण करेंगे इन्द्रभूति ने कहा कहो विप्र! क्या कहना चाहते हो? इन्द्र मेरे गुरू तीर्थंकर महावीर स्वामी हैं मौन धारण किया है अतः मैं आपसे एक काव्य के अर्थ को समझना चाहता हूँ इसीलिए ही आपके पास आया हूं आप समझाने का कष्ट करे इसमें आपका बड़ा उपकार होगा।

इन्द्रभूति : यदि मैं तेरे काव्य के अर्थ को समझा दूं तो तूँ मुझे क्या देगा?

इन्द्र : यदि अप इस काव्य का अर्थ समझा दोगें तो मैं आज से ही आपका विधिवत शिष्यत्व स्वीकार कर लूंगा। किन्तु यदि आप नहीं समझा पाये तो फिर आप भी क्या करेंगे?

इन्द्रभूति : ऐ वृद्ध ! मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि मैं तेरे काव्य का अर्थ नहीं कर पाऊँ तो मैं अपने भाईयों व शिष्यों सहित अपने मत को छोड़ तेरे गुरू का शिष्य हो जाऊँगा यह मेरे अटल प्रतिज्ञा है। तथा मैं इन दो व्यक्तियों की साक्ष भी देता हूँ देख यह है इस नगर का वमी तथा यह है काश्यप नामक ब्राह्मण।

इन्द्र : टीक है मुझे विश्वास है कि आप अपनी प्रतिज्ञा से नहीं डिगेगें आदि ! तथा दोनों साक्ष स्वरूप ब्राह्मणों ने भी कहा कि गौतम अपने वचनों के पटके है।

इन्द्रभूति : कहो उस काव्य को कहो?

(जब दानों परस्पर प्रतिज्ञा वद्ध हो चुके तव इन्द्र ने गम्भीरता पूर्वक अपनी लालित्य भाषा में कहना प्रारंभ किया)

इन्द्र : त्रैकाल्यं द्रव्य-षट्कं नव-पद-सहितं जीव-षट्काय-लेश्याः।
पंचान्ये चास्तिकाया व्रत-समिति-गति-ज्ञान-चारित्र भेदाः।।
इत्यैतन्मोक्षमूलं त्रिभुवन-महितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः।
प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशति च मतिमान यः सवै शुद्धदृष्टिः।।१।।

इन्द्रभूति इसे सुनते ही अत्यंत विस्मित होता है और कहता है अरे ! अरे !! यह क्या तूने पढ़ दिया अर्थ नहीं लगा पाया वह सोचने लगा कि ये बाते तो किसी भी वेद व पुराणों में नहीं मिली न कभी किसी से सुनी क्या मुझसे भी बड़ा ज्ञानी इसका गुरू है, कैसे करूँ? क्या करूँ? यदि उत्तर नहीं देता हूँ तो मेरा पांडित्य जाता है अतः उसी से मिलना चाहिए यह सोच इन्द्रभूति ने कहा कि हे विप्र ! इसका मैं तेरे गुरू को ही उत्तर दूंगा तथा

शास्त्रार्थ करूगाँ बता तेरा गुरू कहाँ है चल मुझे शीघ्र ले चल अपने गुरू के पास इतना सुनते ही इन्द्र खुश हो गया और इन्द्रभूति को रास्ता बताता हुआ आगे-आगे चलने लगा इन्द्रभूति के साथ उसके ५०० शिष्य थे उसके भाई वायु भूति और अग्निभूति भी अपने-अपने ५००-५०० शिष्यों के साथ चलें। चलते-चलते वे समवशरण में जा पहुंचे वहाँ इन्द्रभूति ने दूर से ही मानस्तंभ देखा और उसे देखते ही उन्हें सम्यग्दर्शन हो गया उनका अभिमान चूर-चूर हो गया तथा प्रभु महावीर स्वामी की वीतराग मुद्रा को देखते ही वह भक्ति से विभोर हो उठा उसने प्रदिक्षिणा देकर उन्हें नमस्कार किया तथा स्तुति की तथा जीव विषयक प्रश्न पूछे भगवान की दिव्य देशना से उसे समाधान प्राप्त हुआ जिसे सुनकर सभी को वैराग्य उमड़ पढ़ा। उसी समय वृहद्द्रव्य संग्रह ग्रन्थ के अनुसार सभी गुरू शिष्यों ने भगवान से (१५०३) निर्ग्रन्थ दिगम्बर दीक्षा ले ली और सम्पूर्ण वस्त्राभूषणों का त्यागकर केशलुंच किये तथा मुनिव्रत अंगीकार कर ध्यानस्थ हो गये। उसी समय उन्हें सप्त ऋद्धियों और चार ज्ञान हो गये तथा वे गणधर पद पर आसीन हो गये। उसी दिन से आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा-गुरूपूर्णिमा के दिन से जाने जानी लगी।

उत्तरपुराण में भी उल्लेख मिलता है कि गौतम गणधर के पहिले भगवान के उपदेश से जीवन विषयक शंका का समाधान हुआ पश्चात् उन्हें वैरागय हुआ तभी उन्होंने दीक्षा ली और गणधर पद को प्राप्त किया।

शिष्य-समूह :- ११ गणधर/३०० अंगपूर्वधारी मुनि/९०००

शिक्षक मुनि, १३०० अवधिज्ञानी मुनि/७०० केवलज्ञानी मुनि, ९०० विक्रियाऋद्धिधारी मुनि, ५०० मनः पर्ययज्ञानी मुनि १४०० अनुत्तरवादी (प्रतिवादी) मुनि।

गौतम आदि कुल - १३१११ आदि मुनि थे।

चंदना आदि कुल - ३६००० आर्यिकाऐं थी।

श्रेणिक आदि कुल : ३००००० श्रावक थे

असंख्यात देव देवियाँ थी

संख्यात तिर्यंच थे

वीरशासन :

६६वें दिन (श्रावण वदी प्रतिपदा के दिन भगवान महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि खिरी थी अतः वह दिन वीरशासन जयन्ति) के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की बिना औष्ठ परिस्पंदन के निराक्षरी दिव्य ध्वनि खिरी थी जो श्रोताओं को अर्द्धमागधी भाषा में परिणत हो गई अर्थात् जो जिस भाषा के जानकर लोग थे उनके समक्ष उसी रूप में परिणत हो गयी। भगवान ने छः द्रव्य सात तत्व संसार और मोक्ष के कारणों तथा उनके फलों का नय और निक्षेपों द्वारा सविस्तृत वर्णन किया।

(उत्तरपुराण के अनुसार तीर्थंकर महावीर स्वामी की दिव्य ध्वनि प्रथम जृम्भिका नगर के उद्यान में) केवलज्ञान उत्पति स्थान

पर ही खिरी थी पश्चात् वहाँ से उनका विहार विपुलाचल पर्वत पर हुआ था। जिनके पुण्य प्रभाव से सभी ऋतुओं के फल फूलों से वन की शोभा वर्णनातीत हो गई थी। वनमाली ने शीघ्र ही भगवान महावीर स्वामी के समवशरण के आगमन की सूचना मगध नरेश श्रेणिक को दी। सुखद समाचार सुन श्रेणिक फूले नहीं समायें। अपने आसन से उठे और सात कदम आगे बढ़कर परोक्ष रूप से भगवान को नमस्कार किया उन्होंने भगवान श्री महावीर स्वामी के दर्शनार्थ चलने की सारे नगर में घोषणा करा दी। समाचार सुनते ही सभी नरनारी हर्ष विभोर हो साज-बाज से परिवार जनों के साथ विपुलाचल पर्वत पर गये तथा दूर से ही समवशरण देख वे शीघ्र ही हाथी से नीचे उत्तर पड़े तथा परोक्ष में ही नमस्कार कर समवशरण की ओर आगे बड़े उन्होंने समवशरण में प्रवेशकर सर्व प्रथम भगवान की तीन परिक्रमा कर नमस्कार किया तथा पूजा स्तुति कर वे मनुष्यों के कोठे में बैट गये।

पुनः भगवान महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि खिरी जिसमें भगवान ने बताया कि -

राजगृही में सेट जिनदत्त रहता था वह अत्यंत धार्मिक प्रकृति का था तथा भगवान महावीर स्वामी का अनन्य भक्त था एक दिन उसने भगवान के उपदेश से प्रभावित हो सल्लेखना ले ली। मृत्यु के कुछ समय पहले उसे प्यास लगी। पत्नी, वृती पति के लिए कुएँ से ताजा जल छानकर लाने गई। इतने में सेट जी के परिणाम अत्यन्त संक्लेशित हो गये कि फिर उनका अमूल्य

सम्यग्दर्शन भी छूट गया और फिर अन्त में उनकी उसी अवस्था में मृत्यु हो गई। अंतिम समय पानी व कुऐं का ध्यान रहने से वे उसी कुंऐ में मेढ़क रुप में जन्मे। नगरी में जब भगवान महावीर स्वामी का समवशरण आया था। तब सारी प्रजा और सम्राट श्रेणिक भगवान के दर्शन पूजन के लिये गये थे यद्यपि सेठ जिनदत्त ने सारी जीवन पूजन पाठ व धर्मध्यान किया था। "आत्मा पर किए गये संस्कार समाप्त नहीं होते।" कोलाहल सुनकर उस मेंढ़क के मन में भी प्रभु के समवशरण में जाने की भावना उत्पन्न हुई। उसकी खोई हुई श्रद्धा पुनः जाग्रत हुई वह एक फूल की पाखुंडी अपने मुंह में ले कर चल पड़ा। किन्तु मार्ग में राजा श्रेणिक के हाथी के पाव के नीचे दबकर मर गया। और देव बन गया। अपने अवधि ज्ञान से पहले जन्म का स्मरण करके वह भगवान महावीर की धर्म सभा में तत्क्षण पहुंच गया। जिनेन्द्र प्रभु की बड़ी भक्ति से बंदना की। उस देव की ध्वजा आदि मुकुट में मेढ़क का चिन्ह देखकर सम्राट श्रेणिक ने उत्सुकतावश गौतम गणधर स्वामी से चिन्ह संवंधित प्रश्न किया। गौतम गणधर ने सारी बात समझाई और कहा कि सच्ची भक्ति में बहुत शक्ति है। सच्ची भक्ति मुक्ति का मार्ग भी खोल देती है महावीराष्टक में कहा भी है :-

"यदर्चा भावेन प्रमुदित मनः दर्दुर इह,
क्षणादासीत्स्वर्गी गुणगण समृद्धाः सुख निधिः।
लभन्ते सद्भक्ताः शिव सुख समाजं किमुतदा,
महावीरस्वामी नयन पथ गामी भवतु मे (नः)।।

अर्थात् जिन जिनेन्द्र प्रभु भगवान महावीर स्वामी की अर्चना के पवित्र भाव से मेढ़क भी एक क्षण में ही गुण समूह से युक्त हो स्वर्ग सुखों की निधि स्वरूप देव पर्याय को प्राप्त हो सकता है, तो फिर यदि कोई सच्चा भक्त मोक्ष सुख को प्राप्त कर ले तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? अर्थात् कुछ नही। वैसे वे महिमावन्त भगवान महावीर स्वामी हम सभी के नयन पथगामी हो दृष्टि गोचर हों।

卐

भगवान महावीर स्वामी के पांच सिद्धान्त

१. अहिंसा

२. सत्य

३. अचौर्य

४. ब्रह्मचर्य

५. अपरिग्रह

भगवान महावीर का शुभ संदेश

जियो और जीने दो

अहिंसा :

तुम्हें जितना अपना जीवन प्रिय है उतना ही दूसरों को भी अपना जीवन प्रिय है। यदि तुम किसी को जीवन दे नहीं सकते तो फिर तुम्हारा उसे छीनने का भी अधिकार नहीं है। किसी भी जीव को सताना या मारना प्रकृति के विरूद्ध अन्याय और अत्याचार है इसकी सजा तुम्हें अवश्य ही बुरी तरह से भोगनी होगी।

जिसे आप आज निर्बल समझ सता रहे है कल वह भी तुम्हें सबल बनकर सतायेगा अतः हिंसा छोड़ो हिंसा सभी पापों का पाप है। करुणा प्रेम दया अहिंसा को धारण करो यह धर्म है। धर्मात्मा दूसरों के कष्टों को अपना कष्ट समझता है दूसरों की पीड़ा देख स्वयं ही पीड़ित हो उठता है वह दूसरे के कष्ट को दूर करने में अपने सर्वस्व के भी न्यौछावर कर देता है।

अहिंसावृती के लिए कभी भी किसी को मारना बंधना नहीं चाहिए दूसरों के अंग-उपांग आदि को छेदन नहीं कराना चाहिए किसी भी दास-दासी या पशु आदि को समय पर भोजन पान आदि देना, किसी भी पशु पर उसकी शक्ति से अधिक भार नहीं लादना। तथा मन वचन गुप्ति का पालन करना ईर्या आदान निक्षेपण समिति का पालन करना एवं दिन के प्रकाश में भोजन करने का यथोचित पालन करना चाहिए।

सत्य :

अहिंसा धर्मपालक कभी झूठ नहीं बोलता है, क्योंकि झूठ भी एक हिंसा है झूठ बोलने से अपनी व दूसरों की खुशी सुख शांति आनंद का हनन होता है। उक्त गुणों के विनष्ट हो जानें से दुःख अशान्ति और आक्रंदन का जन्म हो जाता है झूठ कभी छिपता नहीं जब प्रकट होता है तो फिर सभी का विश्वास टूट जाता है फिर लाख प्रयत्नों से भी नहीं जुड़ पाता। विश्वासहीन जीवन फिर मृत तुल्य बना देता है। अतः कभी भी किंचित भी झूठ मत वोलो। मौन रखो या कम बोलो पर ऐसा सत्य भी मत बोलों कि जिससे दूसरे के जीवन या जीविका विनाश हो जाए।

झूठ उपदेश नहीं देना किसी की ऐकांतिक क्रिया देख प्रगट नहीं करना झूठे दस्तावेज नहीं लिखना, किसी की धरोहर को नहीं हड़पना इशारों को प्रगट नहीं करना सदा क्रोध, लोभ, भय, हँसी का त्याग कर शास्त्रानुसार बोलने से सत्यव्रत का अच्छी तरह से पालन होता है।

अचौर्य :

चोरी मत करो, क्योंकि धन लोगों को प्राणों से प्रिय होता है। धन हरण उन्हें प्राण हरण जैसा कष्ट देता है, अतः यह भी एक हिंसा ही है।

चोरी से प्राप्त धन अधिक समय तक नहीं टिकता ''पाप की कमाई पाप भावों को पैदा करती है।'' जब तुम्हारे भाग्य में दरिद्रता ही है तो फिर तुम दूसरे के चुराये गये धन से कब तक

अमीर बने रहोगे। सब कुछ पाने पर भी चोर दरिद्र ही रहता है उसे डर भय सदा बना रहता है। जीते जागते भी उसके समक्ष मृत्यु तिरष्कार अविश्वाश और घ्रणा सदा खड़ी रहती है तथा अचौर्य-आत्मा का गुण है गरीबी के मध्य भी अचौर्य व्रतधारी शांति और आंनद से जीता है। बड़े-बड़े लोग भी उसका विश्वास करते है। सम्मान देते है, सहयोग देते है और तो क्या इस व्रत के प्रभाव से उसके बुरे दिन भी बदल जाते है। अतः कभी भी किसी की बिना आज्ञा से व बिना प्रयोजन के रखी हुई पड़ी या भूली हुई वस्तु को मत ग्रहण करो।

अचौर्य वृतधारी को चाहिए कि वह कभी भी दूसरों को चोरी का उपाय नहीं बताए, चोरी से लाई गई सामग्री को नहीं खरीदना राज्य के विरूद्ध कोई काम नहीं करना, नापने तोलने के बांटो से कम-बड़ नहीं तोलना, असली में नकली सामग्री नहीं मिलाना तथा साधको को चाहिए कि वे शूने गुफा में छोड़े गये मकान आदि में ठहरे जहॉ न कोई रोकता हो और न स्वयं किसी को रोकना ऐसे स्थान पर ठहरे भोजन की शुद्धि रखें तथा किसी भी साधर्मी लोगों से विसंवाद न करें।

ब्रह्मचर्य :

अब्रह्म कुशील यह सामजिक तथा धार्मिक अपराध है। कुशील सेवन से व्यक्ति का व्यक्तित्व धूमिल हो जाता है उसकी वेइज्जिती होती है, वे इज्जित जीना मारने के तुल्य है। इससे वासनाऐं भड़कती है वासित मन वाला व्यक्ति दुस्कृत्य करने से कभी घबराता नहीं है वह वासनाओं की पूर्ति के लिये अपनी माँ बहिन

बेटी व पत्नी में कोई अंतर नहीं समझता और सभी पर पत्नीवत् व्यवंहार तक करने लगता है व अपनी व दूसरों की मर्यादायें समाप्त कर घोर से घोर कुकृत करने लगता है जिससे इस लोक में तिरस्कार मार पीट तथा मृत्यु तक हो जाती है, वे इज्जिती होने से वे इज्जित जीना मरण से भी अधिक कष्टप्रद है, नरक आदि में फिर उसे लोहमयी अग्नि से संतप्त स्त्रियों से आलिंगन कराया जाता है। वासनाओं से वासित मन वाला व्यक्ति भले बुरे का ज्ञान नहीं करता उसका मन सदैव अपवित्र रहता है ''अपवित्र मन में कभी भी धर्म भावना नहीं होती'' अतः जीवन में यथाशक्ति ब्रह्मचर्य रखना चाहिए शादी नहीं करना श्रेष्ठ है यदि यह संभव न हो तो स्वदार संतोषव्रत लेना चाहिए और फिर शनैः शनैः इच्छाओं को जीतना चाहिए।

ब्रह्मचर्य व्रतधारी को चाहिए कि वह कभी किसी का विवाह न कराये, व्यभिचारी या विवाहिता या अविवाहिता स्त्रियों के यहां उठना, वैठना न करे अनंग क्रीड़ा तथा कामुक भाव न लाये वह कभी स्त्रियों विषयक कथाऐं न सुने उनके मनोहर अंगों को न देखे, पूर्व की रति क्रीड़ा का स्मरण न करे वृष-इष्ट रस का सेवन न करे तथा शरीर श्रृंगार भी न करे।

अपरिगृह :

परिगृह भी एक ग्रह है। जो ग्रह की तरह प्राणी को पीड़ित करता है। परिग्रही को सदा लोभ लालच बनी रहती है, वह सदा अनावश्यक सामग्री को एकत्रित करता रहता है कभी-कभी वह तृष्णा वश जीवनोपयोगी सामग्री को इतना अधिक एकत्रित कर

लेता है कि जिससे फिर वह दूसरों के जीवन की भी किंचित परवाह नहीं करता तथा लोभ वश स्वयं उन वस्तुओं का अपने लिए भी उपयोग नहीं कर पाता इसके लिए वह हिंसा करता है, झूठ बोलता है चोरी करता है छल कपट करके पाप कर्मो का संचयकर नरक तिर्यंच आदि दुर्गति के दुःसह दुःखों को भोगता है। तथा इस लोक में वह निरंतर परिग्रह का संग्रह, रक्षा करता है तथा वस्तु के छीनने आदि का निरंतर भय बना रहता है कभी-कभी उसे चोर लुटेरे लूटते है अतः परिग्रह का सर्वथा त्याग करना ही श्रेष्ट है यदि इतना संभव न हो तो उसकी सीमा रखना चाहिए।

इस व्रतधारी को चाहिए कि वह कभी ली हुई, खेत मकान सोना, चांदी, भैंस, अनाज, नौकर, नौकरानी, तथा वर्तन, वस्त्र की मार्यादा का उल्लंघन न करे। एवं पंचेन्द्रिय के मनोज्ञ अमनोज्ञ विषयों में रागद्वेष न करें।

आज तक हमने जो जाना है वह उपदेशों से जाना है पर वास्तव में हमने भगवान वर्द्धमान स्वामी की वास्तविक खोज नहीं की कि उनके उपदेश से पूर्व क्या भूमिका थी। यह जानने का प्रयास नहीं किया। यदि भगवान उपदेशों में सुख के स्रोतों को दे देते तो संभवतः बहुत से लोग उन्हें समझ सकते थे। भगवान महावीर स्वामी भी समझ रहे थे यदि वह स्रोतो सबको मिल जायेगा तो सुख की कीमत घट जायेगी। हीरे यदि कंकड़ों, पत्थरों की तरह पड़े रहें तो हीरे की कीमत घट जायेगी, हीरा इतना कीमती नहीं रहेगा जितना रहना चाहिए। हीरे का महत्व कम हो जायेगा। यदि हीरा व्यक्ति को सहज प्राप्त हो जायेगा तो संभव है, लोगों

में हीरे को पाने की जिज्ञासा नहीं होगी। उन्हें उसे पाकर कोई प्रसन्नता नहीं होगी। भगवान महावीर स्वामी ने अनेक उपदेश दिये, एक सूत्र उन्होंने चर्या के द्वारा किया। उसका प्रतीक अपना चिन्ह, मूर्ति व उसके माध्यम से हम जान सकें कि उन्होंने क्या किया? जिससे हम जान सकें कि आखिर में वह आविष्कार क्या है, सुख का उपाय क्या है, सुख के मूल स्रोत क्या हैं? जिसको उन्होंने उस मूर्ति में छिपा कर रखा था। आप देख रहे होंगे यहॉ पर मनुष्यों में अंतर है, एक ऐसे मनुष्य हैं जिनके पास कुछ है, दूसरे वे मनुष्य हैं जिनके पास कुछ नहीं है।

भगवान महावीर स्वामी ने इसी अंतर में से सुख के रास्ते को जाना था कि मनुष्य दुःखी है तो अपने अहंकार के कारण। मनुष्य दुःखी है तो 'मैं' और 'मेरे' के कारण। अहंकार 'मैं' और 'मेरे' के कारण होता है। जब तक व्यक्ति बाह्‌य अवस्थाओं में रहेगा। यही 'मैं' और 'मेरा' आनंद की अनुभूति सच्चे सुख को भुला देता है। यही मैं और मेरा भौतिकता में भ्रमाता है। यही 'मैं' और 'मेरा' स्वात्मोपलब्धि में बाधक है।

जो बनने के लिए बनते हैं, वे कभी बन नहीं पाते, यदि भगवान, भगवान बनने के लिए बनते तो संभव है वह बन नहीं पाते। वे बने नहीं थे, बन गये थे, बहुत से व्यक्ति ऐसे होते है जो बन गये लेकिन बनने की भावना नहीं थी, क्योंकि भगवान शब्द बाद में बनता है जब वे भगवान बन जाते हैं। यदि बनने की भावना निरंतर चलती रही तो संभव है, उन्हें निर्विकल्प ध्यान नहीं होता और वे भगवान नहीं बन पाते।

हाँ बनने के लिए वन जाना आवश्यक है, जो वन (जंगल) गये, वे बन गये। महावीर स्वामी वन गये। अतः वे बन गये। रामचन्द्र जी, हनुमान जी, भगवान आदिनाथ अनेक महापुरूष वन गये अतः बन गये।

लेकिन बनने वाले नहीं बन सकें क्योंकि बनने वालों में ''मैं'' और ''मेरा'' बना रहा, वे उससे दूर नहीं रह सके। वही 'मैं' और 'मेरा' ने दुःखों को आमंत्रित किया। वही ''मैं'' और ''मेरा'' अनंत दुःखों का स्थान है। यही ''मैं'' और ''मेरापन'' भवसागर में गोते लगवाता है। वही ''मैं'' और ''मेरापन'' दुःखों का मूल स्रोत बन गया है।

भगवान ने बतलाया था कि ''मैं'' और ''मेरापन'' को कैसे भुलाया जाये। हम आज ''मैं'' और ''मेरे'' में लटक गये, भटक गये। मैं बुद्धिमान हूँ, मैं कलावान हूँ, मैं ज्ञानवान हूँ, मैं धनवान हूँ, मैं राजा हूँ, मैं रंक हूँ। इसका तात्पर्य यह है कि आप एक अपरिमेय सत्ता की ओर जा रहे थे। आप एक शाश्वत सिद्धान्त की ओर जा रहे थे, लेकिन ''मैं'' और ''मेरे'' ने आपको रास्ते में ही दिग्भ्रांत कर दिया। परिणाम यह हुआ कि आपने कहा कि मैं ज्ञानवान हूँ तो आप ज्ञान से बंध गये। आपने कहा कि मैं धनवान हूँ तो आप धन से बँध गये, आपने कहा कि मैं कलावान हूँ तो आप कला से बँध गये। यह ''मेरापन'' भी घाट है, एक खूँटा है जिसमें मनुष्य बँध जाता है। यह ''मैं'' और ''मेरापन'' एक जेल है जिसमें मनुष्य कैद हो जाता है। भगवान ने यह भी खोजा था कि यह मेरा सोना है, यह मेरा धन है, यह मेरा

बांधव है, यह पुत्र है, यह पुत्री है, यह ''मेरापन'' अपनी एक सीमा बना देता है। यही ''मेरापन'' हमें अपनी आत्मा की ओर आकर्षित नहीं होने देता, यही ''मैं'' और ''मेरापन'' आत्मा पर पड़ा हुआ मोह का पर्दा है जो वास्तविक ज्ञान में बाधक है। भ्रमित कराने वाला है।

भगवान जानते थे कि शादी करना ''मैं'' और ''मेरापन'' को जन्म देता है, यही कारण था कि उन्होंने शादी नहीं की। उन्होंने जाना था कि ''मैं'' और ''मेरापन'' हमारा नहीं है, तो हम शादी क्यों करें? जो वस्तु हमारी नहीं है, उसे पाने का व्यर्थ प्रयास क्यों करें? यह स्वभाव नहीं है, विभाव है और विभाव अनंत दुःखों का आवास है। मैं उस विभाव में क्यों जाऊँ? उन्होंने अपने चिंतन से जान लिया था कि ''मैं'' और ''मेरा'' क्या है? उसको नष्ट करने के उपाय क्या है? उन्होंने सम्यक् साधना से अपने ''मैं'' और ''मेरे'' को समाप्त कर दिया।

सम्भव है कि भगवान ने सोचा होगा कि ''मैं'' अन्य लोगों को भी ''मैं'' और ''मेरे'' की परिभाषा समझाऊँ ताकि वे भी साधना के माध्यम से ''मैं'' और ''मेरे'' को समाप्त कर दें। लेकिन वे जानते थे ''मैं'' और ''मेरेपन'' की परिभाषा अभी मनुष्यों की समझ में नहीं आयेगी।

क्योंकि मनुष्यों की खोपड़ी पशुओं से भी निराली है। पशुओं को भी समझाया जावें तो वे समझ जायेंगे लेकिन मनुष्य की समझ पशुओं से विचित्र है। भगवान के समवशरण में मनुष्य के साथ पशु भी थे। मनुष्य की अपेक्षा पशु अधिक थे, भगवान के उपदेशों

को पशुओं ने समझा था। उन्होंने भी अपने जीवन को सार्थक किया था वे भी सुधर गये थे, वे पशु से देव बन गये थे। वे मनुष्य के सामने देव रूप में उपस्थित हुए थे इनका यह रूप ही कह रहा था कि ''मैं'' आपका ही प्रतिरूप हूँ। बन्दर, मुर्गी, मेढ़क आदि अनेक जीवों ने अपना कल्याण किया। उन पशुओं की आत्मा जो पतित से पावन बन गयी थी।

मनुष्य को भी आश्चर्य था कि यही पशु था जो कभी मेरे घर में बॅधा रहता था। यही पशु कभी हमसे नीचे थे, आज हमसे महान् बन गये हैं मैं 'मनुष्य, मनुष्य ही रहा, ये पशु से देव बन गये। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के विकास को सहनकर लें, उसे ईर्ष्या न हो ऐसा होना दुर्लभ है। मनुष्य को पशुओं की उन्नति सहन नहीं हुई मनुष्यों में पशुओं के प्रति ईर्ष्या प्रारम्भ हो गई, जिससे मनुष्य पशुओं पर दुराग्रह होने लगा। मनुष्य अपनी इच्छा से पशुओं से कार्य करवाने लगे। मनुष्य ने सवारी के लिए उसे अपने तॉगों में लगा लिया, मनुष्य पशुओं को विभिन्न प्रकार की यातनायें व ताड़ना देने लगा। उनको बंधन में कर लिया। मनुष्य के मन में पशुओं के प्रति ऐसी भावना थी कि उन्हें भगवान के पास ही नहीं पहुंचने दिया जाये।

भगवान ने मनुष्यों से कहा-तुम किसे बांधना चाहते हो, तुम जिसे बांधना चाहते हो वह कभी नहीं बॅध सकता है।

हम इसको बॉध लेंगे, यह भ्रांति है ''तुम सिर्फ अपने आपको अपनी भावनाओं को बॉध सकते हो''। दूसरों किसी को मारने से कोई मरता नहीं है, जीव स्वयं मरता है स्वयं जीता है। यदि

आप कहें कि मैंने पशु को मारा, मैंने इसको बॉधा है, तो प्यारे बन्धुओं ! आपने पशु को नहीं मारा है, पशु को नहीं बॉधा है, बल्कि पशु ने तुम्हें मारा है, पशु ने तुम्हें बांधा है। तुमने पशु को कष्ट नहीं दिया उसने तुम्हें कष्ट दिया।

आपने बबूल के बीज बोये हैं तो आपको फल भी बबूल के मिलेगे, यदि आपने आम के फल बोये हैं तो आपको फल आम के ही मिलेगे। बबूल के बीज बोने वाले व्यक्ति को आम का फल नहीं मिलेगा और आम का बीज बोने वाले व्यक्ति को बबूल का फल नहीं मिलेगा। जिसने जो बोया है, उसे उसी का फल मिलेगा।

यदि आपने कष्टों को बोया है, हिंसा को बोया है, आपने दूसरों के लिए बंधन बोया है यदि आपने तिरस्कार बोया हेगा तो फल में आपको कष्ट ही मिलेगा, हिंसा ही मिलेगी, बंधन ही मिलेंगे, तिरस्कार ही मिलेगा। मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान रामचन्द्र के पास सेना नहीं थीं। राम लक्ष्मण मात्र दो भाई थे। सीता का हरण हो गया था। रामचन्द्र जी को सीता को छुड़ाना था लक्ष्मण क्रोध में बोले यदि रावण सीता माता का हरण कर सकता है तो मैं भी रावण का हरण कर लूॅगा। मैं उसके प्राणों का हरण कर लूॅगा। मैं अभी विद्याओं को सिद्ध करके रावण का वध करूॅगा, मैं अभी माता सीता को लेकर आता हूॅ।

रामचन्द्र भी मार्यादा पुरूषोत्तम थे वे प्रत्येक कार्य दूरदर्शिता से करते थे। वे लोक मार्यादा का सतत् ध्यान रखते थे। वह प्रत्येक कार्य आदर्शों को लेकर करते थे। उन्होंने लक्ष्मण से कहा

कि सीता को लाना है, लेकिन छुड़ाना कठिन है, रावण को पराजित करना आसान है, किन्तु रावणीवृत्ति को पराजित करना कठिन है। हमें सीता जी को लाना नहीं छुड़ाना है, "रावण की पराजय नहीं करना रावणीवृत्ति की पराजय करना है"। उसकी पराजय मानवोचित रीति से करना है। तब लक्ष्मण ने कहा कि मानवोचित रीति से रावण की पराजय कैसे संभव है? अपने पास सेना नहीं है। रावण के पास अठारह अक्षोहिणी सेना है। रामचन्द्र जी बोले यदि रावण के पास अक्षौहिणी सेना है तो राम के पास भी अक्षौहिणी सेना है। मैं प्रत्येक प्राणी की रक्षा करूँगा, प्रत्येक जीव के कष्टों को दूर करूँगा।

रामचन्द्रजी ने भालू, बन्दर आदि अनेक पशुओं के कष्टों को दूर किया जिससे सभी पशु-पक्षी रामचन्द्र जी के प्रति समर्पित हो गये। उन्होंने कई मनुष्यों व राजाओं की सहायता की, उनकी रक्षा की, उनके कष्टों को दूर किया जिससे उन्हें अनेक विद्यायें व शक्तियाँ प्राप्त हुई। रामचन्द्र जी के पास अब शक्ति का संगठन हो गया था जिस पर रावण को भी भरोसा नहीं था। जिस समय रावण पराजित हो गया उसके बाद रावण रामचन्द्र जी से बोला- "मैं सोच रहा था कि आप दो ही भाई हैं, लेकिन आपने मुझे पराजित कर दिया। आपके पास ऐसी कौनसी शक्ति थी?" रामचन्द्र जी ने कहा कि इसका कारण तुम ही बताओ आप ब्राह्मण हैं आप हमसे ज्यादा विद्वान हैं, हमारी उम्र से आपकी उम्र अधिक है, आपको जीवन के अनुभव अधिक हैं। तब रावण ने कहा आज मैं नहीं बतालाऊँगा। आज आपको ही बतलाना होगा। रामचन्द्र जी ने कहा तुम मेरे अनुभवों को जानना चाहते

हो तो इतना ही जान लेना कि ''यदि शक्तियों को उत्पन्न करना है तो शक्तियों को बोना होगा और यदि शक्ति को नष्ट करना है तो उन्हें काटना होगा।'' काटने से कभी शक्ति उत्पन्न नहीं होती तथा बोने से कभी शक्तियाँ समाप्त नहीं होती। मैंने एक-एक जीव की रक्षा का वचन लिया था। मैं हर प्राणी की रक्षा करूंगा। इसी संकल्प का यह परिणाम है कि आने वाले समय में मेरे पास अक्षौहिणी सेना तैयार हो गयी। मैंने शक्तियों को बोया था इसलिए उन शक्तियों का वृहद् रूप में आविष्कार हुआ। तुम्हारे पास यही कमी थी तुम शक्तियों को तोड़ते रहे। एक-एक धागा कट जाने से रस्सा समाप्त हो जाता है। उसी प्रकार एक-एक शक्ति कम होने पर तुम्हारी अक्षौहिणी सेना समाप्त हो गई। रस्सी से घिसते-घिसते पत्थर भी कट जाता है। यदि आप इस काटने की विद्या को समाप्त कर देते तो आपका पतन नहीं होता। आपकी शक्तियाँ एक-एक करके समाप्त हो गयी। क्योंकि आपने काटने की विधि अपनाई थी। जिससे मेरी शक्तियाँ एक-एक करके अखण्ड रूप से सुरक्षित रहीं।

रावण यदि तुम मेरे अनुभव पूछते हो तो सुनो, मैंने जो अनुभव किया वह सुनाता हूं मैंने जो आनन्द जंगलों में पायाहै, वह महलों में नहीं पाया। जंगलों का आनन्द अपने आप में निराला है। जंगलों में भी मेरे पास असीम सुविधायें हैं। जिस समय विभीषण के लिए राज्य दिया गया था तब विभीषण ने कहा कि मेरे लिए राज्य स्वीकार नहीं है इस राज्य का अधिकारी में नहीं हूँ, इस राज्य के अधिकारी आप हैं आपने यह राज्य जीता है आप ही राज्य करें।

जब भरत के लिए यह राज्य दिया गया तब भरत ने कहा कि जगह-जगह पर लक्ष्मी के झगड़े खड़े हैं, भाई-भाई में राज्य के लिए झगड़े होते हैं। लक्ष्मी (धन) चंचला है, मुझे ऐसी लक्ष्मी की चाह नहीं है। भैया इस राज्य पर आपका ही अधिकार है आप ही इस पर शासन करें। आप ही इस पर शासन करें।

राम ने कहा कि राज्य मेरा है, लेकिन मैं तुम्हें इस राज्य पर संचालन करने की आज्ञा दे रहा हूँ। लक्ष्मण ने दोनों स्थितियों को देखा। वे सोच रहे थे कि क्या कारण है कि दुनिया जिसके लिए अनेक प्रयत्न करती है लेकिन फिर भी उसे वह प्राप्त नहीं होता। लेकिन रामचन्द्र जी के पास बार-बार राज्य आता है लेकिन वह इसे ठुकरा देते हैं। रामचन्द्र जी ने पुनः वही सूत्र दोहराया कि यह राज्य (सम्पदा) लक्ष्मी भ्रांति है, अशांति है और दुःखों का स्थान है।

दीक्षा के समय रामचन्द्र जी का यही चिन्तवन था। सांसारिक वैभव राजलक्ष्मी सभी क्षणिक हैं यह सभी बाह्य वस्तु पर हैं, ये मेरी नहीं हैं इनमें ममत्व बुद्धि के कारण ही आज मेरी यह स्थिति है। ''ममत्व बुद्धि के त्याग किये बिना कोई भी जीव निजात्म रूप को प्राप्त नहीं कर सकता।'' इसीलिए मुझे ''मैं'' और ''मेरापन'' को त्यागना है। भगवान रामचन्द्र जी ने जो सूत्र दिये थे वे ही सूत्र भगवान महावीर स्वामी ने भी दिये थे। प्यारे वन्धुओं, आज हमें सच्चे अर्थों में कुछ समझना है, जानना है, पहचानना है, तो ''मैं'' और ''मेरापन'' को समझें और उसको त्यागने का प्रयास करें। आप कुछ न कुछ मात्रा में महावीर स्वामी

के सूत्रों को अपनाने का प्रयास करें तो एक न एक दिन आप भी सच्चे रूप में उनके उपासक बन जायेंगे।

प्यारे बन्धुओं, सुख को बोने से सुख की प्राप्त होगी, शान्ति को बोने से शान्ति की प्राप्ति होगी। आप शान्ति, सुख, सहयोग चाहते हैं तो पहले उन्हें बोने का प्रयास करो। भगवान ने नारा (संदेश) दिया था कि 'जिया और जीने दो' को गुंजायमान करने का प्रयास किया। यदि आप दूसरों की रक्षा करोंगे तो आपकी रक्षा होगी अन्यथा जिस प्रकार बिल्ली चूहे को देखकर दौड़ती है उनमें जन्मजात बैर रहता है, नेवला सर्प को देखकर दौड़ता है अन्य प्राणियों को देखकर नहीं क्योंकि नेवला और सर्प में जन्मजात बैर होता है। पूर्व में उसे सताया होगा। पूर्व संस्कार के कारण उन्हें एक-दूसरे को देखकर क्रोध भड़क जाता है। आपने देखा कि दूख का परिणाम दुख के रूप में ही मिल रहा है। इसलिये ''आप यदि सुख चाहते हो तो सभी को प्रेम दो'' किसी भी जीव के प्रति द्वेष भाव नहीं रखो'' सभी को अभयदान दो सभी के प्रति सरल सहज बन जाओ।

इस तरह हमने भगवान् महावीर स्वामी के पावन पुनीत जीवन दर्शन में देखा कि वे कितने महान अनुपम योगी थे। जिनका दिव्य उपदेश किसी जातीय या सम्प्रदाय विशेष के लिये नहीं था अपितु सारे विश्व के लिये था। वे संकीर्ण नहीं विशाल दृष्टिकोण के धनी थे। किन्तु हां उनकी विशाल दृष्टि अविवेकपूर्ण दृष्टि नहीं थी। अपितु विवेकपूर्ण विशाल दृष्टि थीं अतः उसमें उचित आवश्यक मयर्यादायें भी थी। वे किसी का मात्र अनुसरण नहीं करते थे। बल्कि सत्य को खोजते, जानते, पाते और फिर उसके

द्वारा जनमानस के लिये उत्तर और अनुत्तर, लौकिक और अलौकिक ऐसे अनुपम सूत्र देते थे। जो अपने आप में अनुलंघनीय, विरोध रहित वस्तु, तत्व के सत्यघोषक निःशंकितपूर्ण वर्णन करने वाले एवं पापों को नष्ट करने वाले सिद्ध हुये हैं। जिनके वचन आज भी वैज्ञानिकों को इस निष्कर्ष तक पहुंचा चुके कि महावीर स्वामी एक ऐसे महान वैज्ञानिक हुये जिन्होंने बिना किसी यांत्रिक साधनों के द्वारा ही अपनी पैनी प्रज्ञा केवलज्ञान द्वारा पदार्थ का यथार्थ निरूपण किया जो आज भी शब्दशः सत्य साबित हुआ और होता जा रहा है।

यथा विज्ञान पहले वृक्ष को जीव नहीं मानता था किन्तु उसके विषय में भगवान महावीर स्वामी ने हजारों वर्ष पूर्व ही घोषणा कर दी थी कि वृक्ष भी जीव हैं। भारतीय वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र वसु ने इसकी खोज की और उसे सत्य सिद्ध कर दिखाया।

इसी तरह विज्ञान पहले जल में जीव नहीं मानता था किन्तु उस विषय में भगवान महावीर स्वामी का कहना था कि वह स्वयं जीव है और अनछने जल की एक बूंद में असंख्यात त्रस जीव हैं। इसकी खोज भी वैज्ञानिकों ने की और दिखा दिया कि अनछने जल की एक बूंद में ३६४५० जीव हैं कुछ वैज्ञानिकों की खोजानुसार ३६००० जीव हैं। सम्भव है कि वे अंसख्यात हो सकते हैं। भगवान महावीर स्वामी जैन धर्म के संस्थापक नहीं थे बल्कि उसके प्रवर्तक थे क्योंकि उनके पूर्व भी तेईस तीर्थंकर हो चुके थे।

तथा इस वर्तमान चौबीसी के पूर्व भी चौबीस तीर्थंकर हो

चुके थे। तथा उसके पूर्व भी हुये थे। अतः यह सिद्ध है कि भगवान महावीर स्वामी जैन धर्म के संस्थापक नहीं थे। क्योंकि जैन धर्म उससे भी पूर्व अनादि से था, है और रहेगा। हॉ उसमें हीनाधिकता जरूर होगी किन्तु समाप्ति नहीं।

उन्होंने प्रत्येक वस्तु को अनेकांतात्मक रूप से बतलाया और उसको जानने के लिये स्याद्वाद शैली का अनुसरण किया, जिसके द्वारा एक ही वस्तु को सात प्रकार की अपेक्षा समझे जाने से वह शैली अपेक्षावाद या स्याद्वाद शैली सप्तभंग से प्रचलित हुई। यह उनकी कोई आद्य खोज नहीं थी और न ही गौतम बुद्ध के चार भंग का अनुसरण था किन्तु यह उनसे भी पूर्ववर्ती होने वाले अनेक तीर्थंकरों का उपदेश का पुनुरूद्धार था।

तथा कुछ लोगों की मान्यता है कि उन्होनें ''पंचम यम'' अपरिग्रह को पूर्ववर्ती तीर्थक्रों के द्वारा प्रतिपादित चार यमों में जोड़ा है किन्तु यह बात भी पूर्णता सत्य नहीं है क्योंकि उससे भी पूर्व पंचम यम की वार्ता शास्त्रों में मिलती है।

यथा उनके ही पूर्व भव-शेर की पर्याय में -चारणऋद्धिधारी मुनिराज ने उन्हें पंचाणुव्रत दिये थे। राजकुमार पार्श्वनाथ ने अर्धमृतक नाग-नागिन को पंचाणुव्रत दिये थे। पार्श्वनाथ के पूर्ववर्ती भव में हाथी को पंचाणव्रत दिये थे। मुनिसुब्रत तीर्थकर के काल में होने वाले मार्यादा पुरूषोत्तम राम ने पूर्ववर्ती भव में बैल को भी पंचाणुव्रत दिये थे तथा इनमें सबसे प्राचीन प्रमाण यह है कि भगवान आदिनाथ के आहार दान की अनुमोदना में आये हुए सिंह, बंदर, सुअर आदि ने भी मृत्यु के समय पंचाणुव्रत

धारण किये थे। साथ ही पूर्ववर्ती सभी मुनिराजों ने भी पंचमहाव्रत धारण किये थे।

इत्यादि अनेक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि पंचममय भगवान महावीर स्वामी के पूर्व से प्रचलित है। उन्होंने उसकी नयी स्थापना नहीं की। किन्तु विस्मृत धारणाओं को पुर्नजीवित किया है। यह उनके हमारे ऊपर अनन्यतम् उपकार है।

इस प्रकार भगवान महावीर स्वामी ने ६ माह ८ दिन १२ घण्टे का गर्भ काल व्यतीत किये। फिर २८ वर्ष ७ माह १२ दिन कुमारावस्था में रहे।

१२ वर्ष ५ माह १५ दिन मुनि अवस्था रहे। २९ वर्ष ५ माह १८ दिन तक भव्यों को कल्याणकारी उपदेश देने में उनका देशनाकाल व्यतीत हुआ। फिर पावापुरी के पद्म सरोवर में कायोत्सर्ग मुद्रा में २ दिन के योगनिरोध के पश्चात दीपावली की प्रभातवेला में प्रभु परम पावन सिद्ध अवस्था को प्राप्त हुये। इस प्रकार उनका जीवनकाल ७१ वर्ष ३ माह २५ दिन १२ घण्टे तक रहा। आज प्रभु की ही पावन जयंती के पुनीत अवसर पर हमने देखा कि सौधर्म इन्द्र, शची आदि ने भगवान की निष्काम भक्ति कर एक भवावतारी अवस्था को प्राप्त किया है। अतः हमें भी चाहिये कि हम भी भगवान के द्वारा प्रतिपादित मार्ग को अच्छी तरह से जाने।

उनकी सच्ची भक्ति के द्वारा अपना जीवन सफल बनायें। उनके द्वारा दिये गये पांच सिद्धांतों को अपने जीवन में उतारें।

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह के द्वारा अपने जीवन को सार्थक करें। भगवान महावीर स्वामी को केवल वचनों तक न ले जायें। भगवान महावीर स्वामी के सिद्धांत को केवल शास्त्रों तक सीमित न रखें उन्हें अपने जीवन की धारा से जोड़ दें। भगवान के गुणों की केवल प्रशंसा न करें बल्कि भगवान के गुणों को अपने अंतरंग से पसंद करें अर्थात उन्हें धारणा करें। भगवान ने अपने अंत (मृत्यु) को जीत लिया था इसलिये आज भी हम उनकी जयंती मनाते हैं हमें भी ऐसा करने का प्रयास करना चाहिये। आज का दिन सच्चे अर्थों में हमारे अंदर यह भावना भरता है कि हम भगवान के पदचिन्हों पर चलकर अपने अंत (मृत्यु) को जीत लें। प्यारे बंधुओं आज हम भगवान् के सद्गुणों में से एक न एक सद्गुण को अपने लिये अवश्य पसंद करें अर्थात अपने जीवन में उतारें। भगवान के जीवन के धर्ममयी दीप से अपने दीप को प्रज्जवलित करें तब ही हमारा जयंती मनाना सार्थक व पावन होगा।

विद्वानों की दृष्टि में भगवान महावीर स्वामी

''ईर्ष्या और द्वेष के कारण धर्म प्रचार में रुकावट लाने वाली बाधाएँ आती रही फिर भी जैन शासन कभी पराभूत नहीं हुआ बल्कि वह विजयी ही बना''।

श्री स्वामी विरुवाक्ष वडियर वेदतीर्थ
प्रोफेसर संस्कृत कॉलेज, इन्दौर

अहिंसा, दया और प्रेम के आधार पर एक विश्वधर्म की स्थापना करना, जैनधर्म प्रवर्तक महावीर का उद्‌देश्य था।

श्री ग.वा. मावलंकर, अध्यक्ष, भारतीय संसद

महावीर का सत् संदेश, हमारे हृदय में विश्वबन्धुत्व का शंखनाद बजाता है।

सर अकबर हैदरी, भू.पू. राज्यपाल, आसाम राज्य

राजगृही में एक दफा बुद्ध ने महानक को कहॉ कि इसिगिली (ऋषिगिरी) के तट पर कुछ निर्ग्रन्थ भूमि पर लेटे तप कर रहे थे। तब मैंने उनसे पूछा-क्यों ऐसा करते हो? उन्होने जबाब दिया कि उनके नाथ पुत्र (भगवान महावीर) ने जो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी है उनसे कहॉ है कि पूर्वजन्म में उन्होंने बहुत पाप किये है, उन्हीं के क्षय करने के लिए वे मन-वचन-काय का निरोध कर रहे है।

मज्झनिकाय जिल्द १ पत्र ६२-६१

वौद्धो ने निर्ग्रन्थो (जैनो) का नवीन सम्प्रदाय के रूप में उल्लेख नहीं किया है और न उसके विख्यात संस्थापक ज्ञात पुत्र (भगवान महावीर स्वामी) का संस्थापक के रूप में किया है। इससे जेओबी इस निष्कर्ष पर पहुचे है कि जैन धर्म के संस्थापक महावीर की अपेक्षा प्राचीन है तथा यह सम्प्रदाय बौद्ध सम्प्रदाय से पूर्ववर्ती है।

श्री विंसेष्ट स्मिथ

बर्द्धमान अपने को उन्हीं सिद्धांतो के प्रवर्तक बतलाते है जो पूर्ववर्ती उन २३ महर्षियों अथवा तीर्थकरों की परपंरा द्वारा जिनका इतिहास अधिकतर आख्यानों के रुप में मिलता है प्रकाश में लाये थे। वे किसी नये मत के संस्थापक नहीं थे। ईस्वी पूर्व की शताब्दी में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की उपासना करने वाले मोजूद थे, जिनके पर्याप्त प्रमाण है। स्वयं यजुर्वेद में तीर्थंकरो के प्रमाण मौजूद थे। भागवतपुराण भी इसी बात की पुष्टि करता है। जैनियों का धर्म मार्ग पहले से अगणित युगों से चला आया है।

इंडियन फिलोसाफी पृ. २२६

(डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन-उपराष्ट्रपति)

"I may say with convention that the doctrine for which life name of lord Mahavira is idalrified now-a days is the doctrine of Ahimsa if and one has pratised if to the fullest extent and propaated most of the doctrin of ahimsa it was Mahavira".

मै यह विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि अहिंसा के सिद्धांत के कारण भगवान महावीर के नाम को भव्यता प्राप्त हुई है। अगर किसी ने पूर्ण अहिंसा को अचारण में लाया हो या उसका प्रचार किया हो, तो वह भगवान महावीर ही है।

महात्मा गाँधी

"Lord Mahavira proclaimed in India that religion is reality end not mere social convention. It is really ture."

डॉ रवीन्द्रनाथ टेगोर

महावीर स्वामी तो जैनों के वर्तमान के आखिरी यानी २४वें तीर्थंकर माने जाते है उनसे हजारो साल पहले जैन मत का जन्म हुआ था। ऋग्वेद में भगवान की प्रार्थना में एक जगह कहाँ है:- 'अर्हन् इदं दयसे विश्वं अथवम्' हे अर्हन् तुम जिस तुच्छ दुनियॉ पर दया करते हो इसमें 'अर्हन् और दया' दोनो जैनो के प्यारे शब्द है। मेरी तो मान्यता यह है कि जितना हिन्दुधर्म प्राचीन है, शायद उतना ही जैनध ार्म भी प्राचीन है। लेकिन किसी धर्म का प्राचीन होना ही बड़ी बात नहीं है, अगर कोई धर्म अर्वाचीन भी है, लेकिन उसमें सही बात है तो उसकी कीमत है। और यदि कोई धर्म अति प्राचीन है, लेकिन सही बात उसमें नहीं है तो उसकी कोई कीमत नहीं है। दर-असल कीमत सही विचार की है और सही विचार जैनों ने बहुत दिया है।

जैनो का मुख्य विचार मशहूर है-प्राणियों पर दया भाव रखना। उनका एक दूसरा भी विचार है जो पहले के जितना प्रसिद्ध नहीं है लेकिन उतना ही महत्व का है, हर बात में मध्यस्थ वृत्ति रखना, यानि किसी बात का आग्रह न रखना। आग्रह से हम एकांगी बन जाते है। जैन धर्म सर्वांगी दृष्टि रखने को कहता है उसे वे सम्यक्त्व कहते हैं यह जैन विचार की विशेषता है।

भूदान यज्ञ के प्रणेता
आचार्य विनोबा भावे

विश्व में शांति स्थापना के लिए अपने प्रयत्नों के परिणामस्वरूप भारत की इस समय जो स्थिति है वह अद्वितीय है। भारत में नेताओं ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भगवान महावीर के सत्य और अहिंसा प्रेम के उपदेश का अनुसरण किया जो किसी जाति एवं समुदाय विशेष के लिए नहीं बल्कि समस्त विश्व के लिए था। महावीर ने सदियों पहले अहिंसा का पाठ पढ़ाया। महात्मा गाँधी ने भी ऐसे ही संदेश दिए। अब आवश्यकता उन सिद्धांतों पर अमल करने की है।

बक्शी गुलाम मुहम्मद-प्रधानमंत्री कश्मीर

"वे (भगवान महावीर) एक अगाध सागर थे। उनमें मानव प्रेम की तरंगे ही ऊँची उठती थी। केवल मानव ही क्यों जीवमात्र की भलाई के लिए उन्होंने सब कुछ न्योछावर कर दिया।"

महात्मा शिवव्रतलाल जी बर्मन, एम.ए.

(अनेक पत्रों के सम्पादक तथा वेदांत कल्पद्रुम आदि अनेक ग्रन्थों के लेखक)

तीर्थंकरों की मान्यता अत्यंत प्राचीन है जैसा कि मथुरा के पुरातत्व से सिद्ध है। महावीर जो इस परम्परा में अंतिम रहे है, एक महान प्रचारक थे जिन्होनें अनेक अनुयायियों को आकर्षित किया है।

रिलिजन्स आफ एन्सिस्ट इंडिया पृ. १११-१२

बौद्ध ग्रन्थों में भगवान महावीर को ज्ञातपुत्र वर्द्धमान और जिन कहाँ हैं बुद्ध की तरह उन्होनें कभी भी किसी गुरु का शिष्यत्व ग्रहण नहीं किया। महावीर जिस परम्परा में जन्मे, उसके प्रति वे सच्चे रहे और प्राचीन धर्म मार्ग के लिए उन्होंने नई ख्याति प्राप्त की। न तो उन्होंने किसी नए संघ की स्थापना की और न नए सिद्धांतों को जन्म दिया। बौद्धो के एतिहासिक ग्रन्थों से यह सिद्ध है कि भगवान महावीर जैन तीर्थंकरों की परम्परा में प्राचीन थे, न कि पहले तीर्थंकर जैसा कि कुछ पाश्चात्य विद्वान कहते है।

फिलोसॉफिस ऑफ इंडिया २२३-२२४

(स्व. डॉ. हेनरिक जिम्मर-जर्मनी)

भगवान बुद्ध के नितांत विपरीत भगवान महावीर उस सम्प्रदाय के संस्थापक थे जो उन्हें अपना महापुरूष मानते है और न वे उस सम्प्रदाय के धर्म के निर्माता ही थे। महावीर के विषय में ऐसी कोई मान्यता नहीं है जैसा की बुद्ध के विषय में है कि वे पहले किन्ही महात्माओं के शिष्य रहे है, जिनकी शिक्षायें उन्हें तुष्ट न कर सकी। उन्हें कोई शंका न थी। वे जानते थे कि सत्य कहॉ है और वे झट से एक जैन मुनि हो गये और फिर जब वे कई वर्षों की तपस्या के पश्चात् सर्वज्ञ हुए, तो यह नहीं बताया गया कि उन्होंने किसी नए

सत्य को पाया (क्यों सत्य सदा एक जैसा होता है उसमें नयापन या पुरानापन मिथ्या है) जैसा कि बुद्ध के विषय में कहाँ जाता है इस प्रकार महावीर अपने सम्प्रदाय के मान्यतानुसार एक प्राचीन समय से आगत धर्म का अनुसरण करते हुए मिलते है। यदि वे जैनधर्म के संस्थापक होते तो उनके अनुयायी उन्हें अवश्य ही उस रूप में मानते।

इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन एण्ड इथिक्स
स्व. डॉ. हरमन जैकोबी, जैन दर्शन दिवाकर, जर्मनी

पहले-पहले जैन तीर्थंकरों द्वारा अहिंसा के कर्म सिद्धांत की गंभीर एवं क्रमिक व्याख्या की गई और उसका भली प्रकार तथा विशेषतया प्रचार किया गया और यह भी अधिक महत्व के साथ वर्द्धमान महावीर के साथ हुआ।

प्रो. तान-युन-शान, अध्यक्ष चीन-भवन विश्व-भारती

नंद राजा जो श्री महावीर के निर्वाण के थोड़े समय पश्चात् हुआ वह तथा खारवेल राजा जो ईसा से २७ वर्ष पहले हुआ है दोनो जैन धर्मी थे तथा ऋषभदेव की मूर्ति पूजा करते थे।

(उदयगिरी पर्वत पर हाथी गुफा के शिरे पर खुदा हुआ लेख)

Bhagwan Mahavira again taught Jainsim. Before him there were twenty-three (23) teachers, they also propagated Jainism from this the entiguity of Jainism is Psta Blis led.

"Lok Manya Bal Gangadhar Tilak"

भगवान महावीर स्वामी ने पूर्व से चले आ रहे जैनधर्म को पुनः प्रकाशित किया है न कि स्थापित किया है क्योंकि उनके भी पूर्व २३ तीर्थंकर हो चुके थे उन्होंने भी उस शाश्वत जैन धर्म का प्रचार ही किया था, स्थापना नहीं। इससे जैन धर्म की प्रचीनता प्रमाणित होती है।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

जैन फिलोसॉफरो ने जैसा पदार्थ के सूक्ष्म तत्वों का विचार किया है उनको देखकर आजकल फिलोसॉफर बड़े आश्चर्य में पड़ जाते है। वे कहते है कि महावीर स्वामी आजकल के साइन्स के सबसे पहले जन्मदाता है।

रिसर्च स्कॉलर पं. माधवाचार्य

महावीर के सिद्धांत में बताये गये स्याद्वाद को कितने ही लोग संशय-वाद कहते है, इसे मैं नहीं मानता। स्याद्वाद संशयवाद नहीं है किन्तु वह एक दृष्टि बिन्दु उपलब्ध करा देती है विश्व का किस रीति से अवलोकन करना चाहिए, यह हमें सिखाता है। यह निश्चित है कि विविध दृष्टि बिदुंओं द्वारा निरीक्षण किए बिना कोई भी वस्तु सम्पूर्ण स्वरूप में आ नहीं सकती। स्याद्वाद पर आक्षेप करना यह अनुचित है।

प्रो. आनंद शंकर वायु ध्रुव

महावीर स्वामीने अपने ज्ञान और अहिंसा के सिद्धांत से संसार की भौतिकवादी आस्था और नीति को नष्ट कर दिया ताकि हम उन्हें प्रथम कोटि का महामानव कह सकते है। जैन उनके प्रति जर्मन विचारक हर्डर की निम्न पंक्तिया चरितार्थ कर सकते है।

युद्ध जीतता है वह वीर, विश्व को वश में करता है वह भी वीर
वह वीर विजेता युद्धों के क्षेत्रो का,
वह वीर विजेता विश्व वश में करने का,
पर वीरों का वीर जो आत्मा को जीतता है,
वह जो नेता निज आत्मा का।

श्रीमति जोसेफ मेरी वान (जर्मनी)

संसार सागर में डूबते हुए मानव ने अपने उद्धार के लिए पुकारा। इसका उत्तर श्री महावीर ने जीव के उद्धार का मार्ग बतलाकर दिया। दुनियाँ में और शांति चाहने वालों का ध्यान श्री महावीर की उदार शिक्षा की ओर आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता।

स्व. डॉ. वालटर शुब्रिग, जर्मनी

महावीर स्वामी ने शब्दों में नहीं, अपितु रचनात्मक जीवन में एक महान आन्दोलन किया। वह आंदोलन जो नवीन एवं सम्पूर्ण जीवन में सुख पाने के लिए नव आशा का स्रोत था जिसे कि हम यहाँ धर्म कह रहे है।

स्व. श्रीमति आइस डेवियस
डी.लिट, एम.ए.

भगवान महवीर अलौकिक महापुरुष थे। वे तपस्वियों में आदर्श, विचारको में महान, आत्मविकास में अग्रसर दर्शनकार और उस समय की प्रचलित सभी विद्याओं में पारगंत थे। उन्होंने अपनी तपस्या के बल से उन विद्याओं को रचनात्मक रुप देकर जन समूह के समक्ष उपस्थित किया था।

स्व. डॉ. अर्नेस्ट लायमेन, जर्मनी

मूलतः वर्द्धमान या महावीर स्वामी जैन सिद्धांत के उपदेष्टा अथवा इससे भी बढ़कर वह व्यक्ति समझे जाते थे जिसने अति प्राचीन योग के पहलुओं का स्वच्छ एवं संक्षिप्त स्पष्टीकरण किया।

डॉ. जोसेफ दुत्सी, इटली

Jain has contributed to the world the sublime doctrine of ahimsa. No other religion has emphasised the extent that Jainism has done. Jainism deserves to become the Universal religion because of its ahinese doctrine.

जैन धर्म ने दुनिया को उर्द्धगामी अहिंसा तत्व की देन दी है। अन्य किसी धर्म ने अहिंसा को आचार एवं विचार में जैन धर्म के समान महत्व नहीं दिया। जैन धर्म अपने अहिंसा के तत्वज्ञान के कारण विश्वधर्म बनने योग्य है।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

भारत के प्रथम राष्ट्रपति

जैन परम्परा हमेशा आचार और विचार दोनों में एक सा अपना स्थान बनाए हुए रही है। आचार में अहिंसा हो और विचार में अनेकांत।

अनेकांत कट्टरता को छुड़ाता है और हमारे अपने मानस में, हमारे दिल में हमारे चित्त में एक प्रकार की स्नेह और सद्भाव की सरिता को प्रवाहित करता है हम इस बात का पूर्ण रूप से गहराई से चिंतन करेगें तो इस अनेकांत ने सारे विश्व को जो एक विशिष्ट मार्गदर्शन दिया है, निश्चित है अनेक प्रकार के व्याख्यान अनेक प्रकार के अवरोध अनेक प्रकार के हमारे सामने आने वाली समस्याओं को सुलझाने का एक बहुत बड़ा साधन रख दिया है।

बहुतअयामी व्यक्तित्व के धनी

राष्ट्रपति डॉ शंकर दयाल शर्मा

प्राचीन ढर्रे के हिन्दु धर्मावलम्बी बड़े-बड़े शास्त्री अब तक भी नहीं जानते कि जैनों का स्याद्वाद किस चिड़िया का नाम है धन्यवाद है जर्मनी, फ्रांस और इग्लैण्ड के उन विद्यानुरागी विशेषज्ञों को जिनकी कृपा से इस धर्म के अनुयायियों के कीर्तिकलाप की खोज हुई और भारतवर्ष के इतर जनों का ध्यान आकृष्ट हुआ ये विदेशी विद्वान जैनों के धर्मग्रन्थों की आलोचना न करते। उनके प्राचीन लेखकों की महत्ता प्रकट न करते तो हम लोग शायद आज भी पूर्ववत् अंधकार में ही डूबे रहते।

स्व. महावीर प्रसाद जी द्विवेदी

"It is the duty of Jainas to propagate the doctrine of Ahimsa though out the world"

"जैनो का यह फर्ज है कि वे सम्पूर्ण संसार में अहिंसा धर्म को फैलायें।

सरदार बल्लभभाई पटेल

"The Jains are a veritable oasis in the desert of human strif and wordly ambition, it were a better world indeed if the world were Jain.

भौतिक वासना और मानवीय यातनाओं की इस रेतीली भूमि में जैन हरे-भरे प्रदेश जैसा है। अगर सम्पूर्ण विश्व जैन होता तो सचमुच यह विश्व अति सुंदर बन जाता।

डॉ. मॉरिस ब्लूमफील्ड
जोहन्स होपकिंस युनिवर्सिटी, वाल्टीमोर (यू.एस.ए.)

"I personally belive that if only Jainism had kept its hold firmly in India. We would perhaps have had a more united India and certainly a greater India than today."

"मेरी यह अपनी मान्यता है कि अगर भारतवर्ष में जैन धर्म का शक्तिशाली प्रभाव रहा होता तो शायद हम अधिक संपन्न भारत देख सकते। यह भी सुनिश्चित है कि आज से अधिक विशाल भारत होगा।"

आर.के. पुष्पुखान चेट्टी (केन्द्र सरकार के मंत्री)

जब तक भारत वर्ष में जैन धर्म की प्रधानता थी तब तक का इतिहास सुवर्णाक्षरों में लिखने लायक है।

रेवरन्ड जे. स्टीवेन्सन

नये अनुशीलन ने जैन ग्रन्थों में आलेखित परंपरा की पुष्टि की है। ये नये संशोधन जैन धर्म तथा उसकी अति प्राचीनता के प्रमाण प्रस्तुत करते है।

मेजर जनरल फर्लांग

"All upper Western North Central Asia then say 1500 to 800 B.C. existed throughout India an ancient and highly organised religion philosophical ethical and sevaral asthetical viz. A Jainism, out of which clearly developed the early ascetical features of a Brahminism and Buddhism."

सभी उच्च पश्चिमी, उत्तर मध्य एशिया के देश मानते हैं कि उस समय, ईसा से पूर्व 1500 से 800 ... सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में अति प्राचीन तथा सुव्यवस्थित और दार्शनिक, नैतिक तथा पूर्ण संयमयुक्त धर्म विधमान था। यह धर्म ही जैन धर्म था। इसी के सहारे प्रारम्भिक बौद्ध तथा ब्राह्मण धर्म के साधुओं के नीति नियमों का विकास हुआ।

डॉ. इ. थॉमस

(शोर्ट स्टडीज इन धी साइन्स ऑफ कम्पेरेटिव्ह रिलिजन)

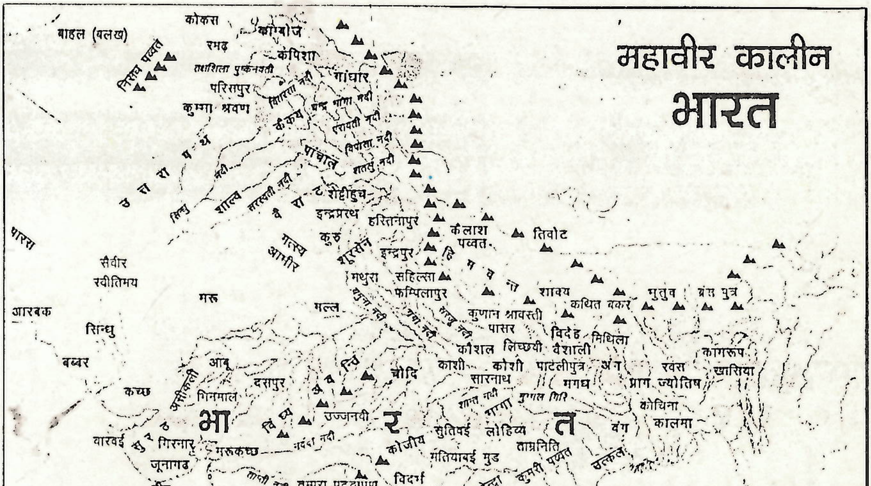
महावीर कालीन
भारत
बाहल (बलख)
कोकरा
कांबोज
रमढ़
कपिशा
तक्षशिला पुष्कलवती
गांधार
परिसपुर
कुम्भा श्रवण
पांचाल
उत्तरापथ
शतद्रु नदी
विपाशा नदी
इरावती नदी
सिन्धु
शाल्व
सरस्वती नदी
रोहीतक
इन्द्रप्रस्थ
हस्तिनापुर
कैलाश
पव्वत
तिवोट
कुरु
शूरसेन
इन्द्रपुर
मत्स्य
आभीर
मथुरा
सहिल्ला
हिमवान
पारस
सौवीर
वीतिभय
मरु
कम्पिलापुर
शाक्य
कथित बकर
मुतुव
ब्रह्मपुत्र
आरबक
मल्ल
कुणाल श्रावस्ती
पासर
विदेह
मिथिला
सिन्धु
कौशल
लिच्छवी
वैशाली
कामरूप
बब्बर
आबू
दसपुर
चेदि
काशी
कोशी
पाटलीपुत्र
अंग
रवरा
खासिया
कच्छ
भिनमाल
सारनाथ
मगध
प्राग ज्योतिष
कोचिना
भा
उज्जनवी
र
त
वंग
कालमा
वारवई
गिरनार
सुराष्ट्र
नर्मदा नदी
कोजीय
सुतियई
लोहिय्य
ताम्रलिति
जूनागढ़
भरुकच्छ
गतियावई मुड
उत्कल
दीव
ताप्ती नदी
तम्परा
पुदुठापण
विदर्भ
सावर
महेन्द्रा
सोसलि
कुमरी पव्वत
कलिंग
सोप्पारय
ठाणा
मरहट्ठ
दक्षिणा पथ
कचणपुर
धनकटक
वणवासी
कृष्णा
आंध्र
अपार
समुद्र
पूर्व
समुद्र
कुड्डक
कावेरी
दक्षिण मदुरा
कनक
पाण्डिय
सींहल
ताम्म पाणि

आचार्य श्री का जीवन परिचय

नाम	:	अरविन्द कुमार जैन
पिता	:	श्री कपूर चंद जी जैन
माता	:	श्रीमती श्यामा देवी जैन
जन्म	:	१२ अप्रैलं १९६३
जन्म स्थल	:	पथरिया जिला दमोह
शिक्षा	:	इण्टर
मुनि दीक्षा	:	६ दिसम्बर १९८३ औरंगाबाद
गुरु	:	परमपूज्य आचार्य श्री १०८ विमल सागर जी
आचार्य पद	:	८ नवम्बर १९९३ सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरी

रामा पब्लिकेशन्स (दिल्ली) फोन : 3550203